महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६२ अंक : १८

दयानन्दाब्द: १९६

विक्रम संवत्: आश्विन कृष्ण २०७७

कलि संवत्: ५१२१

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२१

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९/५९

ijkidkjh

सितम्बर द्वितीय २०२०

अनुक्रम

०१. वैदिक संस्कृति में आर्य-शूद्र ...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-५६	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. मूर्त्तिपूजा-विवेचन	गंगाप्रसाद उपाध्याय	१६
०५. देवनागरी लिपि वैज्ञानिकता....	डॉ. प्रभु चौधरी	२४
०६. संस्था-समाचार	ब्र. रोहित आर्य	२७
०७. शङ्का समाधान	डॉ. वेदपाल	२९
०८. संस्था की ओर से...		३१
०९. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		३३
१०. 'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र'		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

वैदिक संस्कृति में आर्य-शूद्र वैमनस्य की कपटपूर्ण कपोल कल्पना

अंग्रेजी शासनकाल में जब भारतीयों को जानकारी मिली कि पाश्चात्य विद्वान् मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स, अलबर्ट वेबर, रुडॉल्फ हॉर्नले, जॉन मूर, विण्टरनिट्ज आदि भारतीय संस्कृत साहित्य का रुचिपूर्वक अध्ययन कर रहे हैं, तो हम भोले भारतीय उन परदेसियों पर फिदा हो गये। जब उन्होंने हमारी छुट-पुट प्रशंसा की तो हम उस पर मन्त्रमुग्ध हो गये। फिर जब उन्होंने हमारी संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, धर्म, धर्मग्रन्थों की आलोचना की तो हम उसको तटस्थ मानकर उनके प्रशंसक बन गये। आगे बढ़कर उन्होंने हमारे इतिहास का न केवल शीर्षासन कराया, अपितु उसको जी-भरकर विद्रूप किया। हमारी संस्कृति, सभ्यता, धर्म, धर्मग्रन्थों का उपहास किया। हमारे देश और समाज में आर्य-शूद्र, आर्य-द्रविड़, सवर्ण-असवर्ण, आक्रान्ता-मूलनिवासी, उत्तर-दक्षिण आदि की कपटपूर्ण कपोल कल्पनाएँ करके विघटन पैदा किया और वैमनस्य के बीज बोये। अंग्रेजों के जाने के बाद इस विरासत को अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक जानकर वामपन्थी विचारधारा के लोगों ने हाथोंहाथ ले लिया। कुछ भारतीयों ने विधर्मियों के निष्कर्षों को ही धर्मनिरपेक्ष और उदारवाद समझ लिया। उसके प्रवाह में वे भी उनके सामने नतमस्तक हो गये। परिणाम सामने है, हम भारतीय अपने परम्परागत प्रामणिक और सत्य निष्कर्षों को उपेक्षित कर उन्हीं के अनुयायी बनने में गौरव समझने लगे, आज भी समझ रहे हैं। अर्थात् प्राचीन भारत में न कोई विद्वान् हुआ, न राजनीतिज्ञ, न इतिहासज्ञ, न अर्थवेत्ता, न वैज्ञानिक, न भूगोलविद्, न खगोलविद्! बस, जो कुछ हैं वे पाश्चात्त्य हैं! इसी मानसिकता ने हमें उनका अन्धानुयायी बना दिया। आज हमने अपनी संस्कृति, सभ्यता, धर्म, इतिहास, देश, समाज विरोधी मन्तव्यों को प्रामाणिक मानकर अपनी पर्याप्त हानि कर ली है, किन्तु फिर भी हम उनको नहीं छोड़ रहे। उन्हीं हानिकारक बिन्दुओं में से एक 'आर्य-शूद्र वैमनस्य' को स्वीकार करना है। वस्तुत: यह बिन्दु भारतीय समाज में आस्थाएँ भंग करके विघटन पैदा करने और ईसाइयत के लिए उर्वर भूमि तैयार करने के लिये ईसाई मिशनरियों के साथ सांठगांठ करके अंग्रेज शासकों द्वारा कल्पित किया गया था। यह रहस्य मैक्समूलर द्वारा अपनी पत्नी को सन् १८६६ में और भारत सेक्रेटरी ड्यूक ऑफ आर्गाइल को १६ दिसम्बर १८६८ को लिखें पत्रों से उजागर हो चुका है। उनमें मैक्समूलर ने हिन्दू धर्म को विनष्ट करके ईसाई मत को स्थापित करने की भड़काऊ प्रेरणा दी है। यह भी लिखा है कि हमने ईसाइयत के लिए वातावरण तैयार कर दिया है, अब यदि ईसाई मत स्थापित नहीं होता है, तो यह शासकों का दोष होगा।

प्रस्तुत विषय में पहला विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या वैदिक सामाजिक व्यवस्था अर्थात् वर्णव्यवस्था में आर्य और शूद्र वर्गों के वैमनस्य की सम्भावना की कोई गुंजाइश थी? अथवा यह ईसाइयों की प्रायोजित साजिश थी?

इस प्रश्न के उत्तर में मैं दृढ़तापूर्व यह कहना चाहूँगा कि इस प्रश्न की अवधारणा ही भ्रामक, निराधार और कपटपूर्ण है, क्योंकि वैदिक मान्यता के अनुसार शूद्र आर्य वर्ण है और आर्य वर्णव्यवस्था का अभिन्न अंग रहा है। अत: वह आर्यों का विरोधी वर्ग नहीं हो सकता। वैदिक वर्णव्यवस्था का क्रियात्मक रूप प्रस्तुत करने वाले शास्त्र **'मनुस्मृति'** में मनु **''वर्णापेतम् अनार्यम्''** (१०.५७) अर्थात् वर्णों से बाह्य को अनार्य मानते हैं और आर्यों में चारों वर्णों को स्वीकार करते हैं (१०.४)। डॉ. अम्बेडकर भी इस मत को स्वीकार करते हुए कहते हैं- ''शूद्र आर्य ही थे अर्थात् वे जीवन की आर्य-पद्धति में विश्वास रखते थे। शूद्रों को आर्य स्वीकार किया गया था।'' और- ''आर्य जातियों का अर्थ है चार वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। दूसरे शब्दों में मनु चार वर्णों को आर्यवाद का सार मानते हैं।'' और भी- ''मनुस्मृति १०.४ श्लोक (**ब्राह्मण: क्षत्रियो वैश्य:...**) दो कारणों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक तो यह कि इसमें शूद्रों को दस्यु से भिन्न बताया गया है। दूसरे, इससे पता चलता है कि शूद्र आर्य हैं।'' इसी

प्रकार वैदिक मान्यता यह है कि आर्य वर्णव्यवस्था के चारों वर्ण एक ही समाज या परम-पुरुष से प्रकटीभूत हैं, अत: वे चारों वर्ण एक ही समाज या परम-पुरुष से प्रकट होने के कारण एक ही वर्ग के हैं और उनमें असमानता, ऊँच-नीच, छूआछूत का कोई भेदभाव नहीं बनता। इस प्रकार जब भिन्न वर्ग ही सिद्ध नहीं होता तो उनमें वैमनस्य का अवसर ही उत्पन्न नहीं होता। बृहदारण्यक उपनिषद् और शतपथ ब्राह्मण में वर्ण संरचना का महत्त्वपूर्ण इतिहास इस प्रकार बताया है- ''आदिकाल में एक ही ब्राह्मण वर्ण था। उससे समाज में वृद्धि-प्रगति नहीं हुई। उनमें से शौर्य स्वभाव के लोगों को लेकर क्षत्रिय वर्ण बनाया। उससे भी वृद्धि-प्रगति नहीं हुई, तो उनमें से वैश्य वर्ण बनाया। फिर भी वृद्धि-प्रगति नहीं हुई, तो उन्हीं कुलों में से शूद्र वर्ण का निर्माण किया'' (१४.४.२.२३-२४)। वैदिक समाज के सभी वर्ण एक वर्ण/कुल परम्परा से थे, इससे बढ़कर स्पष्ट प्रमाण कोई नहीं हो सकता।

आर्य-शूद्र वैमनस्य की अवधारणा इस कारण भी भ्रामक है, क्योंकि यह इस भ्रान्ति पर आधारित है कि वैदिक वर्णव्यवस्था जन्म के आधार पर निर्धारित होती थी, जबकि वास्तविकता यह है कि वह गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर निर्धारित होती थी। इसी भ्रान्ति से भ्रमित होकर पाठक तीन वेदों में पाये जाने वाले वैदिक वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति दर्शाने वाले निम्नलिखित मन्त्र के अर्थ को ठीक नहीं समझ पाते हैं-

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत।।

(ऋग्वेद १०.९०.१२; यजु ३१.११; अथर्व. १९.६.६)

इस मन्त्र में पहली अर्थभ्रान्ति यह है कि पाठक इसमें वर्णस्थ व्यक्तियों की उत्पत्ति समझ लेते हैं, जबकि यहाँ वर्णों की उत्पत्ति का कथन है। जैसे पहले मैट्रिक, बी.ए., एम.ए. कक्षाओं का निर्माण होता है फिर उनमें योग्यता के आधार पर प्रवेश होता है। ठीक उसी प्रकार समाजपुरुष या परम-पुरुष की तुलना करके पहले वर्ण बने हैं फिर गुण-कर्म-योग्यता के आधार पर उनमें व्यक्तियों का प्रवेश हुआ है। दूसरी अर्थभ्रान्ति मुख आदि से उत्पत्ति की है, जबकि यह प्रतीकात्मक कर्म निर्धारण है। मुख के गुणों को ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण वर्ण कहलायेगा, बाहुओं के गुणोंवाला क्षत्रिय, जंघाओं के गुणोंवाला वैश्य और पगों के गुणों की तुलना से शूद्र वर्ण कहा जायेगा। यहाँ व्यक्तियों की उत्पत्ति न तो सम्भव है और न अपेक्षित है, क्योंकि व्यक्ति तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र दिन-प्रतिदिन बनते रहे हैं, बनते हैं, जबकि यह उत्पत्ति तो एक ही बार आदिसमाज में हुई है, अत: यहाँ वर्णों की उत्पत्ति का कथन है। मनुस्मृति में भी पहले १.३१ में वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन है फिर कर्म निर्धारण के द्वारा वर्णस्थ व्यक्तियों का निर्धारण है (१.८७)। कर्मनिर्धारण ही यह स्पष्ट करता है कि वर्ण जन्म के आधार पर नहीं, कर्म के आधार पर बनते हैं। यदि कर्म आचरण में नहीं होंगे तो वह उस वर्ण का नहीं माना जा सकता। जैसे-अध्यापन करने वाला 'अध्यापक', वकालत करनेवाला 'वकील', चिकित्सा करनेवाला 'डॉक्टर' कहलाता है, उन-उन कर्मों के बिना नहीं।

वैदिक व्यवस्था में दो जन्म माने हैं- १. मातृजन्म, २. ब्रह्मजन्म अर्थात् विद्याजन्म। विद्याजन्म को प्राप्त कर और अपने अभीष्ट वर्ण की शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर किसी भी कुल के जो बालक-बालिकाएँ स्नातक बनते थे, वे **द्विज** कहलाते थे और शिक्षा-दीक्षा के अनुसार आचार्य उनके वर्ण की अन्तिम घोषणा करता था। जो किसी भी कारण से गुरुकुल में प्रवेश नहीं लेते थे अथवा तीन में से किसी वर्ण की शिक्षा-दीक्षा पूर्ण नहीं करते थे वे **'एकजाति'**=एक मातृजन्म वाले अर्थात् शूद्र कहलाते थे। वे जन्म से किसी भी कुल के हो सकते थे, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कुल के। इस प्रकार द्विज और शूद्र बनने का आधार ब्रह्मजन्म और वर्णस्थ प्रशिक्षण था। यदि वैदिक वर्णव्यवस्था में जन्म के आधार पर वर्णव्यवस्था होती तो वह मातृजन्म से ही निर्धारित हो जाती, उसके निर्धारक तत्त्व ब्रह्मजन्म तथा आचार्य नहीं होते। माता-पिता से भिन्न जब तीसरा आचार्य किसी वर्ण का निश्चय करता है, तो वह जन्म पर आधारित कभी नहीं हो सकता। देखिये वेदानुकूल आदिशास्त्र 'मनुस्मृति' का विधान है कि- द्विजातियों की उत्पत्ति करनेवाला उपनयन संस्कार है तथा कर्त्तव्य कर्म भी हैं जिनका पालन करने से कोई व्यक्ति 'द्विज' माना जाता है-

एषः प्रोक्तो द्विजातीनामौपनयनिको विधिः।
उत्पत्तिव्यंजकः पुण्यः कर्मयोगं निबोधत।।

(मनु. २.६८)

अर्थ- यह मैंने वह उपनयन संस्कार कहा और अब उस कर्त्तव्य-संहिता को कहूँगा जिसके करने से बालक-बालिकाएँ 'द्विजाति' बनते हैं, दूसरे जन्म को धारण करते हैं। आगे कहा है-जाति अर्थात् वर्ण माता-पिता से नहीं अपितु उसका जन्म आचार्य के द्वारा होता है। समाज में वही वर्ण मान्य और प्रामाणिक होता है जिस जाति=जन्म को आचार्य देता है-

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्याऽजराऽमरा।।

(मनु. २.१४८)

इसी प्रकार कहा है कि ब्राह्मण का शरीर निम्न श्लोक में वर्णित कर्मों या धर्मों के पालन से बनता है अर्थात् माता-पिता से ब्राह्मण नहीं बनता-

स्वाध्यायेन व्रतैः होमैः त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।

(मनु. २.२८)

इन प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि चारों कुलों के बालक-बालिकाएँ ही वर्ण की शिक्षा-दीक्षा के आधार पर स्वाभीष्ट वर्ण को धारण करते थे। कोई ब्राह्मण, कोई क्षत्रिय, कोई वैश्य बनता था तो कोई शूद्र रह जाता था। जैसे आज एक ही परिवार का कोई व्यक्ति व्यापारी, कोई सेनाधिकारी तो कोई अध्यापक और कोई अशिक्षित रह जाता है। चारों कुलों के बालकों से बने 'शूद्र वर्ण' का न तो कोई वर्ग हो सकता है और न परस्पर विरोध या वैमनस्य पनप सकता है, क्योंकि वे शूद्र भी उन्हीं के कुलों से होते हैं। उन्हीं कुलों के होने के कारण उनसे छूत-अछूत, ऊँच-नीच का व्यवहार भी सम्भव नहीं हो सकता।

वैदिक संस्कृति में एक बार वर्ण-ग्रहण करने के बाद व्यक्तियों को यह भी स्वतन्त्रता थी कि पुनः अभीष्ट वर्ण-दीक्षा प्राप्त कर वर्ण-परिवर्तन कर सकता था। यह प्रक्रिया जन्मगत वर्ण को नकार देती है। देखिये-

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियात् जातमेवं तु विद्यात् वैश्यात् तथैव च।।

(मनु. १०.६५)

अर्थ- ब्राह्मण वर्ण की योग्यता प्राप्त करके शूद्र ब्राह्मण बन सकता है। कर्मों के त्याग से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य के कुल में उत्पन्न व्यक्ति का भी वर्ण परिवर्तन हो जाता है।

इस श्लोक में पठित '**जातम्**' पद विशेष ध्यान देने योग्य है जो यह सिद्ध करता है कि जन्म से किसी भी कुल में उत्पन्न व्यक्ति का वर्ण बदल जाता था। इसी प्रकार मनुस्मृति के ९.३३५ श्लोक में शूद्र को उत्तम वर्ण की प्राप्ति का विधान है।

दो वर्गों में वैमनस्य की प्रवृत्ति स्थिर जीवन-शैली के आधार पर पनपती है, किन्तु वैदिक वर्णव्यवस्था में वर्ण परिवर्तन की स्वतन्त्रता होने के कारण किसी भी वर्ण की प्रकृति स्थिर नहीं थी। स्थिर नहीं होने के कारण ब्राह्मण से लेकर शूद्र वर्ण तक के व्यक्ति बदलते रहते थे। जहाँ व्यक्ति स्वयं और उनकी सन्तानें स्वेच्छा से या रुचि से वर्ण का चुनाव कर लेते थे तो उस स्थिति में कोई स्थिर वर्ग नहीं बन पाता था। वर्ग न बनने से विरोध या वैमनस्य का अवसर ही नहीं आता था।

कुछ ऐतिहासिक उदाहरणों से इस प्रक्रिया की पुष्टि हो जाती है। शूद्र कुल में उत्पन्न कवष ऐलूष, वत्स काण्व, मातंग वेदार्थद्रष्टा ऋषि बने। अज्ञात कुल सत्यकाम जाबाल ब्रह्मवादी ऋषि बना। ब्रह्मा के ब्राह्मण कुल में उत्पन्न मनु स्वायंभुव क्षत्रिय राजा बना,फिर उसके तीन पौत्र महावीर, कवि और सवन क्षत्रिय से ब्राह्मण बने। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बने। इसी प्रकार पूरे समुदाय का भी वर्ण-परिवर्तन हुआ है जैसे पोखरना और पाठक 'ब्राह्मण' बने हैं। ये पहले निम्न जाति के थे (हिन्दी शब्दकोश)।

वेदोक्त प्रेम और सद्भाव का वर्णन हमें यह सुनिश्चित जानकारी देता है कि वैदिक वर्णव्यवस्था में ऊँच-नीच रहित समानता और भ्रातृभाव का व्यवहार था। आर्यो और शूद्रों के वैमनस्य की अवधारणा को मिथ्या सिद्ध करने वाले वेदों के निम्नलिखित मन्त्र द्रष्टव्य हैं-

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि देहि रुचारुचम्।।

(यजु. १८.४८)

अर्थ- हे परमात्मन्! मेरी ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों में सदा प्रीति बनी रहे। मुझमें उनसे प्रेमभाव को सुदृढ़ कीजिए और-

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये।।

(अथर्व. १९.६२.१)

अर्थ- मुझे ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों का प्रियपात्र बनाओ। मैं भी उनसे उनको प्रिय व्यक्ति मानकर व्यवहार करुं, प्रिय दृष्टि से देखूं।

व्यावहारिक धरातल पर हम देखते हैं कि मनुस्मृति आदि शास्त्रों में शूद्रों के कर्त्तव्य 'द्विज वर्णों के सेवाकार्य' बतलाये हैं। शूद्र द्विजों के घरों में भोजन निर्माण, स्वच्छता, सेवकाई आदि सभी प्रकार के श्रम-कार्य करते थे। घरों में प्रत्येक कार्य में भागीदार रहने वाले और सदा साथ रहने वाले व्यक्ति न तो अछूत हो सकते हैं, न उनके साथ भेदभाव का व्यवहार किया जा सकता है और न उनके साथ वैमनस्य हो सकता है। महर्षि मनु ने तो शूद्रों के प्रति प्रेम, सद्भाव और करुणा का ऐसा महान् उदाहरण प्रस्तुत किया है कि वैसा उदाहरण संसार की किसी अतीत और आज की सभ्यता में नहीं मिलता। मनु कहते हैं-

भुक्तवत्सु अथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि।
भुम्जीयातां ततः पश्चात्-अवशिष्टं तु दम्पती।।

(३.११६)

अर्थात्- ''घर में आये हुए विद्वान् अतिथियों और अपने सेवकों (जो शूद्र होते हैं) को पहले भोजन कराके, उसके पश्चात् अवशिष्ट भोज्य सामग्री से पति-पत्नी स्वयं भोजन करें।'' कैसा महान् आदर्श प्रस्तुत किया है वैदिक धर्मशास्त्रकार ने! आर्य-शूद्र सद्भाव को सिद्ध करने के लिए यह एक ही महाप्रमाण पर्याप्त है। क्या ऐसी उदारता आज किसी अन्य संस्कृति में है?

शूद्रों के प्रति दण्डात्मक व्यवस्था की चर्चा किये बिना यह आलेख अपूर्ण रहता है, अतः उसकी संक्षिप्त चर्चा की जाती है। मनु की दण्डव्यवस्था के आधारभूत तत्त्व हैं- १. अपराध की प्रकृति, २. अपराध का दुष्प्रभाव, ३. अपराधकर्त्ता का पद-ज्ञान, पद व प्रतिष्ठा। इन आधारों पर मनु यथायोग्य दण्ड का विधान करते हैं। वे उच्च पद वाले को अधिक और निम्न पद वालों को क्रमशः अल्प दण्ड का विधान करते हैं, क्योंकि उच्च पद वाला व्यक्ति अपराध के गुण-दोष का अधिक ज्ञाता है। ८.३३७, ३३८ में प्रस्तुत दण्डसिद्धान्त के अनुसार मनु कहते हैं कि जिस अपराध में शूद्र को आठ पैसे दण्ड दिया जाये वहीं वैश्य को १६ पैसे, क्षत्रिय को ३२ पैसे, ब्राह्मण को ६४ पैसे अथवा १०० पैसे अथवा १२८ पैसे दण्ड दिया जाये। क्योंकि वे अपराध के अधिक ज्ञाता हैं। मनु का यही दण्डसिद्धान्त मौलिक है। इसमें शिकायत तो सवर्णों को होनी चाहिए, शूद्र को नहीं।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि वैदिक वर्णव्यवस्था में शूद्र निन्दित नाम कभी नहीं रहा। तीन उच्च वर्णों की शिक्षा-दीक्षा न लेने वाला किसी भी कुल का व्यक्ति शूद्र कहाता था। फिर वह शारीरिक श्रम ही करता था। आज भी अशिक्षित व्यक्ति शारीरिक श्रम कार्य करके ही जीविका करता है।

शूद्र वर्ण को पैरों से उत्पन्न श्रमजीवी क्यों कहा है? इसका बहुत सटीक स्पष्टीकरण देते हुए तैत्तिरीय संहिता (७.१.१.४) में कहा है कि ''क्योंकि शूद्र वर्ण का व्यक्ति पैरों पर चल-फिर कर श्रम के कार्य करता है अतः उसको पैरों की तुलना से उत्पन्न कहा जाता है।' स्थालीपुलाक न्याय से, उक्त प्रमाणों से हमें वैदिक संस्कृति की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। शूद्र के प्रति भेदभाव, अन्याय, छूआछूत और वैमनस्य के जो उल्लेख मिलते हैं वे जन्मगत जाति-व्यवस्था की देन हैं। जन्मगत जाति-व्यवस्था का उद्भव बुद्धकाल से कुछ शताब्दियों पूर्व हुआ था। उस समय जन्म के आधार पर वर्ग बन गये। फिर उनमें वैमनस्य पनपा। जन्मना जातिवाद के समय जो पक्षपातपूर्ण लेखन हुआ उसको प्राचीन ग्रन्थों में मिला दिया गया। जाति-व्यवस्था को वर्णव्यवस्था पर आरोपित कर दिया। उन्हीं के कारण कर्मणा वर्णव्यवस्था में जन्मना जातिव्यवस्था की भ्रान्तियाँ पनप गईं। वैदिक व्यवस्था में आर्य-शूद्र वैमनस्य की कपोल कल्पना निरर्थक है और आधारहीन है।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

मृत्यु सूक्त-५६

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूप वञ्चना।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि।।

हम वेद-मन्त्रों पर विचार कर रहे हैं और आज हमारे विचार का विषय ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ वें सूक्त का ११ वाँ मन्त्र है। इस मन्त्र का देवता पितृमेध है और इसमें मृत्यु और जन्म का आरम्भिक रूप कैसे हो, इसकी चर्चा है।

हमने पिछली चर्चा में एक बात समझने का यत्न किया था कि आज जो कुछ उत्पन्न होता हुआ, बनता हुआ, बिगड़ता हुआ, एक क्रम दिखाई दे रहा है, तो इसका प्रारम्भ कैसे होगा? इसका मूल कैसे विकसित होगा। हमें आज पता है कि बीज है और बीज से विकसित होगा। कोई वनस्पति है तो उसके बीज से, उसके तने से विकसित कर लेते हैं। वैसे ही मनुष्य को हम विकसित कर लेते हैं। मनुष्य, मनुष्य से उत्पन्न हो जाता है। पशु, पशु से उत्पन्न हो जाता है। हमारी यात्रा यह है कि हम पीछे चलें तो मनुष्य, मनुष्य के रूप में शाश्वत नहीं है, शरीर, शरीर के रूप में शाश्वत नहीं है।

यह शरीर आज यदि माता-पिता से ही बना है तो प्रश्न यह उठता है कि प्रथम बार इस शरीर को किसने और कैसे बनाया? इसकी आप कल्पना करेंगे तो बड़ी जटिल होगी, क्यों? माता-पिता को बतायेंगे तो फिर उनका शरीर बनानेवाला कोई होना चाहिये। इसको दर्शन की भाषा में अनवस्था दोष कहते हैं, अर्थात् इसका कोई उत्तर ही नहीं बनेगा कि आप पीछे-पीछे जाते जायेंगे, यह कब तक चलेगा? वह माता-पिता से पैदा, माता-पिता अपने माता-पिता से, वे अपने माता-पिता से, कब तक? तो जहाँ इसकी सीमा आती है वह सीमा इसका प्रारम्भ होता है, क्योंकि यहाँ वस्तु उत्पन्न हो रही है और नष्ट हो रही है, तो उत्पन्न होकर नष्ट होना स्वाभाविक है। उत्पन्न होती है कारण से और नष्ट होकर कारण में मिल जाती है। कार्य नष्ट हुआ कारण में मिल गया, कारण में रचना हुई कार्य बन गया। तो जो-जो कार्य है वह सब अपने कारण में विलीन होता है। यह शरीर भी कार्य है और अपने कारण में विलीन होता है। अन्तर केवल इतना सा है कि यह शरीर जिस तरह से उत्पन्न हो रहा है, मूल कारण में उस तरह से उत्पन्न नहीं हो सकता और क्योंकि उत्पन्न होने के प्रकार हम देखते हैं तो मनुष्य भले ही सीधा भूमि में उत्पन्न होता हुआ नहीं दिखाई दे रहा है, किन्तु पेड़ तो भूमि से ही उत्पन्न हो रहा है और पेड़ में, वनस्पति में और मनुष्य में समानता है चेतना की, अपने जैसे को उत्पन्न करने की, अन्दर से बढ़ने की, अनुकूलता, प्रतिकूलता का प्रभाव पड़ने की।

ये जो परिस्थितियाँ हैं वे एक चेतन की हैं और इनका जो चैतन्य है वह इस भूमि के अन्दर से प्रकाशित होता है। आप बीज बोने के लिये पेड़ के अन्दर नहीं डालते। बीज उगता तो पेड़ में है, लेकिन पेड़ में बीज डालकर नहीं उगाते, जैसे माता-पिता व प्राणियों में हम देखते हैं। हमें कोई पशु चाहिये, जैसे गाय, तो हम गाय के गर्भ में उसका बीज डालते हैं, लेकिन वनस्पति में ऐसा नहीं होता। वनस्पति में बीज भूमि में डालना पड़ता है, भूमि ही उसका गर्भ है और वहाँ से ही वह पौधा/पेड़ पैदा होता है, उत्पन्न होता है। जब हम पूर्ण विकसित जो चैतन्य है उसको जिस रूप में उत्पन्न होते हुए देखते हैं, उसका आधा चैतन्य पृथ्वी से

उत्पन्न होता हुआ दिखाई देता है। तो हमें एक सहज बात समझ में आती है कि जब पृथ्वी के अन्दर से आधा चैतन्य उग सकता है तो पूर्ण चैतन्य क्यों नहीं उग सकता? आप एक प्रश्न और कर सकते हैं कि यदि भगवान् ऐसा कर देता कि मनुष्य भी भूमि के अन्दर से उत्पन्न हो जाता तो क्या होता? मनुष्य आज जिस रूप में दिखाई देता है, वह मनुष्य के बीज को गाड़ने से तो पैदा नहीं हो सकता। इसके लिए उचित परिस्थिति, वातावरण विकसित होते-होते वनस्पति से पशु-पक्षियों में और उससे आगे विकसित हो कर मनुष्यों में आप देखेंगे कि दो विभाग स्त्री और पुरुष के मिलते हैं। पेड़ों में भी फल का निर्माण दो के संयोग से होता है, लेकिन बीज की उत्पत्ति में दो के संयोग की आवश्यकता नहीं होती। बीज की उत्पत्ति सीधे गर्भ से है, बीज गर्भ में गया और उत्पन्न हो जाता है। प्राणियों में भी यही तो होता है। गर्भ में बीज डालने भर का काम ही पुरुष या पुल्लिंग व्यक्ति के द्वारा होता है। शरीर का विकास तो गर्भ में ही होता है। एक तरफ माँ है जो विकास करती है, एक तरफ पृथ्वी है जिसमें विकास होता है। उसमें बीज डालने से वनस्पति पैदा हुआ और प्राणियों में स्त्री में बीज डालने से प्राणी उत्पन्न हुआ। इन दोनों में समानता है, जो उत्पन्न कर रहा है हम उसे मातृत्व का आधार मानते हैं। इसलिए भूमि को माता कहा है। **माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि**- हमारी जो मौलिक समस्या है कि इस जगत् में जो कुछ है- वनस्पति जगत् में है, प्राणी जगत् में है, मनुष्य जगत् में है, उसका प्रारम्भ कैसा रहा होगा, यह कैसे उत्पन्न हुआ होगा? यदि केवल भूमि से उत्पन्न होता तो किसी प्रजाति के नष्ट हो जाने पर वह प्रजाति पुनः उत्पन्न नहीं की जा सकती, वह प्रजाति मनुष्य नहीं बना सकता। इसलिए बहुत सारी प्रजातियाँ मनुष्य द्वारा या प्रकृति द्वारा नष्ट होने पर वह प्रजाति आज हमारे पास नहीं है। जैसे वनस्पतियों की बहुत सारी प्रजातियाँ नष्ट हो गयीं, पशु-पक्षियों की बहुत सारी प्रजातियाँ नष्ट हो गयीं, वैसे ही मनुष्य भी यदि नष्ट हो जाये, तो यह अपने आप उत्पन्न नहीं हो सकता, इसे कोई उत्पन्न करेगा। जब तक माता-पिता हैं, तब तक माता-पिता से उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अब प्रश्न यह है कि माता-पिता नहीं हैं तो कैसे उत्पन्न होगा? तब भी उत्पन्न वैसे ही होगा। एक उत्पन्न करने वाला होगा, और एक जिसके अन्दर से वह उत्पन्न हो रहा है, वह होगा। तो उस समय कौन होगा? उस समय पृथ्वी माँ होगी और परमेश्वर पिता होगा और वेद मन्त्र यही कहता है-**गर्भामाधात् दुहितुर्गर्भमाधात्**।

यह पृथ्वी जो है, यह माँ है और परमेश्वर पिता है। संसार, जो कुछ उत्पन्न हुआ है वो पृथ्वी रूप माँ के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। इसलिये हमारी एक मूल समस्या का समाधान यहाँ होता है कि सबसे पहला रूप कैसा रहा होगा? प्रथम समय में परमेश्वर रूप पिता और पृथ्वी रूप माता से प्राणियों का जन्म हुआ। **माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि**। इस मन्त्र में बहुत बड़ी समस्या का समाधान है। इसमें कहा गया- **उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा निबाधथाः**। एक माँ जैसे अपनी सन्तान को सुखी करती है, वैसे ही पृथ्वी भी अपनी सन्तानों को सुखी करती है, सुख के साधन देती है। यहाँ माँ चेतन है और वहाँ जड़ है। लेकिन वह जड़ होने पर भी, जब उसमें से वनस्पति उगती है तो वह उसकी रक्षा करती है। उसके नियम, उसकी व्यवस्था उसकी रक्षा करते हैं। मन्त्र में कहा- **मा निबाधथाः** कि हे पृथ्वी माँ! तुम इनके उत्पन्न होने में, उत्पन्न होकर जीवन में, बाधा, कष्ट, दुःख मत दो। कोई बाधा हो जाये तो उसे होने मत दो। इसमें मूल जो बात समझ में आयी, वह यह कि कुछ पहली बार बना है, यह पहली बार बनना सबसे बड़ी पहेली है। हमने साँस तो लिया, साँस हम रोज लेते हैं, लेकिन यह श्वास-प्रश्वास जो चल रहा है, यह पहले कब चला? कैसे चला? अपने आप ही चल गया हो, ऐसा तो हो नहीं सकता। कारण से श्वास रुकता है। श्वास लेने की परिस्थिति न होने पर श्वास रुकता है, वैसे ही श्वास लेने की परिस्थिति हो तो ही श्वास चलता है और उस परिस्थिति में केवल जड़ कारण नहीं है, परिस्थिति में चेतन भी कारण है। इसलिये वह सहज परिस्थिति बनाता कौन है, बनती कैसे है? यह रूप आया कहाँ से, यह हमारे मन में एक प्रश्न रहता है।

वेद कहता है **उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा निबाधथाः सूपायनास्मै भव सूप वञ्चना**। कहते हैं कि जब पहला-पहला कुछ निर्माण हुआ होगा और पहला भी निर्माण

कैसा? परमेश्वर की रचना में जब अन्तिम बनाकर बिल्कुल तैयार कर दिया, तो वह प्राणी है, मनुष्य है, वनस्पति है। ये एक-दूसरे के लिए बने हुए हैं, एक-दूसरे के पूरक हैं। यह सारा जो चेतन संसार है, प्रश्न यह उठता है कि इसका मूल कैसे बना? यह पहली बार कैसे बना? हर जगह जहाँ-जहाँ भी प्रथम है उसका बड़ा महत्त्व है। हम जब कोई बात अनुभव करते हैं तो बाकी सब चीजों में हमें कोई समस्या नहीं होती कि किससे कौन बना। शेर से शेर बना, घोड़े से घोड़ा बना या मनुष्य से मनुष्य बना, क्योंकि आज घोड़े से घोड़ा तो बनता है पर आदमी से घोड़ा या घोड़े से आदमी तो बनता नहीं, यह अव्यवस्था होगी, अनियम होगा। ऐसी स्थिति में इनको इतने रूपों में किसने बनाया? तब एक यही उत्तर देना पड़ता है कि आज जैसे हम पृथ्वी में पौधों को, वनस्पतियों को जन्म लेते हुए देखते हैं तो यह दृष्टान्त हमको कहीं ले जाता है और हमारी समझ में यह आता है कि जब पहली बार कोई जन्म हुआ होगा, तब पृथ्वी से ही हुआ होगा। यद्यपि पृथ्वी जड़ है लेकिन उसके अन्दर से चेतना फूटती हुई, अंकुरित होती हुई हमें दिखाई दे रही है। उसका अर्थ पृथ्वी में चैतन्य आ गया ऐसा नहीं है बल्कि ऐसा है जैसा इस जड़ शरीर में। जड़ शरीर कुछ उत्पन्न करने का सामर्थ्य नहीं रखता, इसमें एक चैतन्य है जो इसे उत्पन्न करने का सामर्थ्य देता है तो शरीर से शरीर का जो जन्म है वह चेतना के आधार पर है, चेतना के बिना नहीं। यदि केवल पृथ्वी ही उत्पन्न कर सकती तो सब वनस्पतियाँ ऐसे ही उत्पन्न हो जातीं, बीज की आवश्यकता न रहती। चैतन्य का आधार तो है, उस चैतन्य के आधार से जन्म होता है, यह सिद्धान्त इस मन्त्र में हमें दिखाई देता है। मन्त्र में कहा गया है कि यह पृथ्वी मातृस्वरूपा है और जैसी सुखद परिस्थिति माँ के पास होती है। उत्पत्ति का स्थान जैसा माँ के पास होता है, वैसा ही पृथ्वी के पास है और इसमें जो शब्दावली है उससे हमारी इस समस्या का समाधान होता है कि प्रथम बार ऐसा कैसे हुआ होगा। हमारे सामने बहुत सारे प्रश्न आते हैं। इन मन्त्रों पर जब हम विचार करते हैं तब मन्त्र इन प्रश्नों को बहुत स्पष्ट करते हैं। अत: यहाँ कहा गया-

माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छ: माह या अधिक समय भी लग सकता है, अत: कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है।

-सम्पादक

शिविर स्थगित सूचना

वैश्विक महामारी कोरोना (कोविड-१९) के कारण आगामी योग साधना स्वाध्याय शिविर दिनांक ०४ से ११ अक्टूबर २०२० स्थगित किया जा रहा है। आप सब इस महामारी से सुरक्षित व स्वस्थ रहें, इसी प्रार्थना के साथ...

मन्त्री, परोपकारिणी सभा

कुछ तड़प–कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

इस भूल का सुधार होना चाहिये– 'सुरूर समग्र' के प्रकाशित होते ही पूरे देश में और उर्दू-साहित्यकारों में इस ग्रन्थ की धूम मचने से आर्यसमाज के गौरव को चार चाँद लग गये हैं तथा श्री जितेन्द्र कुमार जी वकील का इस उत्तम करणीय कार्य को करने करवाने के लिये जन्म सफल हो गया है। इस ग्रन्थ की तथा सुरूर जी की चर्चा से आर्यसमाज की एक चुभनेवाली भूल की ओर आर्यों का ध्यान दिलवाने की आर्यमात्र से विनती करने लगा हूँ। 'सुरूर समग्र' के छपते ही पाँच युवा स्कॉलर पीएच.डी के लिये सुरूर साहित्य पर कार्यरत हैं। इसे आर्यसमाज की एक उपलब्धि तथा जितेन्द्र कुमार जी की देन मानना चाहिये।

श्री पं. भारतेन्द्रनाथ जी– आर्यसमाज के निराले ही ढंग के साहित्यकार, कवि व सेवक थे। मैंने अनेक बार यह प्रेरणा दी कि उन पर कोई सुयोग्य युवक कुछ कार्य करे। उन पर न तो कोई कुछ लिखता है और न बोलता है। अकेला मैं ही यह कहे जा रहा हूँ। मैं आयु के इस मोड़ पर क्या-क्या लिखूँ? हम सब अल्पज्ञ जीव हैं। अल्पज्ञता के कारण भारतेन्द्रनाथ जी में भी कुछ न्यूनतायें थीं, परन्तु प्यारे प्रभु ने उन्हें अनेक सद्‌गुणों से मालामाल कर दिया। उनकी जीवनसङ्गिनी श्रीमती राकेश रानी उनके व्यक्तित्व की पूरक थीं। भारतेन्द्र जी की अद्भुत उपलब्धियों की राकेशरानी जी के बिना कल्पना भी नहीं की जा सकती।

एक आर्य विचारक ने उनकी चर्चा छिड़ने पर एक बार कहा था कि भारतेन्द्र जी के मन में जब आता था तो मिनटों में आन्दोलन को छेड़कर शिखर पर पहुँचा देते थे। मैं उनके विवाह से भी पहले से उनके सम्पर्क में आ चुका था। पोप पाल के भारत आने पर आन्दोलन तो बहुत बड़ा भारतेन्द्र जी ने खड़ा कर दिया, परन्तु आर्यसमाज उसका कुछ भी लाभ न उठा सका। कारण कोई भी नेता घर से निकलकर मुम्बई न पहुँचा। तब महाराष्ट्र के कई आर्यों को स्थानबद्ध कर दिया गया था। उस समय पं. सत्यवीर जी अमरावतीवालों ने तथा मैंने भी एक सभा में भाषण दिये थे, परन्तु प्राचार्य भगवानदास जी के प्रभाव से सरकार ने हम दोनों के विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही न की।

भारतेन्द्रनाथ जी अद्भुत कवि थे। जन-जन को उभारना और उनमें अपनी प्रेरक कविताओं से जोश भर देना इस कलाकार कवि के लिये ईश्वर की देन थी। वे कवितायें कहाँ लुप्त हो गईं? मैं भागदौड़ करके हार मानकर बैठ गया। मुझे उनके कविता-संग्रह की एक भी पाण्डुलिपि न मिली तथापि कोई माई का लाल निकले तो सौ दौ सौ रचनायें खोजी जा सकती हैं। आर्यसमाज ने कुछ न किया तो कलङ्क का टीका गंगा यमुना के जल से भी न धुल सकेगा। जो मनमानी सूचियाँ बताकर इतिहास गढ़ने के कलाकार थे उन लोगों ने तो कहीं भारतेन्द्र जी का नामोल्लेख भी नहीं किया।

भारतेन्द्र जी के प्रकाशन के जनून का क्या कहना! जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि। उन्होंने क्या-क्या प्रकाशित किया करवाया? यह अपने आप में एक इतिहास है। मेरे जीते जी कोई मेरी स्मरणशक्ति का लाभ लेकर यह कार्य सिरे चढ़ा दे। मेरे बाद पछताना ही पड़ेगा। स्वामी सत्यप्रकाश जी, महात्मा आनन्द स्वामी और श्री आचार्य उदयवीर उनकी इस सेवा व कला पर मुग्ध थे। उन्होंने छोड़ा किसको? स्वामी श्रद्धानन्द, पं. चमूपति जी, पं. धर्मदेव जी, स्वामी सत्यप्रकाश जी, स्वामी ब्रह्ममुनि जी तथा आदिकाल के साहित्यकारों को वह प्रकाश में ले आये। अंग्रेजी और मराठी साहित्य का भी प्रकाशन कर दिखाया।

अभी पं. इन्द्र जी पर मेरे एक पुराने लेख को एक पत्र ने पुनः छापते हुए भूलवश कुछ पंक्तियाँ नहीं छापीं। उनके जीवन का वह पक्ष देकर अगले विषय को लिया जावेगा। एक बार श्री क्षितीश जी वेदालङ्कार की कोटि के विद्वान् पत्रकार ने मुझ से यह प्रश्न पूछ लिया कि आपकी पुस्तकों के एक-एक पृष्ठ पर तथा लेखों में बहुत अनूठे शीर्षक व उपशीर्षक होते हैं। आपने यह विद्या, यह कला कहाँ से? किससे सीखी? मैंने अविलम्ब उत्तर दिया, '' श्री भारतेन्द्रनाथ जी, महाशय कृष्ण जी तथा श्री पं. इन्द्र से यह कला सीखी।'' तीनों के ऐसे कई उदाहरण भी उनको दिये। वह

मुझसे एकदम सहमत थे कि आपका कथन यथार्थ है। श्री क्षितीश जी का यह भी कहना था कि और भी बहुत ऐसे प्रोफेसर होंगे जिन्होंने भारतेन्द्र जी से बहुत कुछ सीखा, परन्तु ऐसा कहने का साहस तो केवल आप ही को है। मैंने कहा कृतज्ञता व आर्यत्व का प्रकश होना ही चाहिये।

जो लेख पठनीय होने पर भी रोचक शैली में न होने से पाठक न पढ़ना चाहें श्री भारतेन्द्र की उस पर प्रेरक टिप्पणी पढ़कर युवा पाठक भी ऐसे लेखों को पढ़ने पर विवश होते थे। क्या इसी विषय को (सम्पादकीय टिप्पणियों को), इसी विधा को लेकर कोई दो-चार युवा आर्यवीर श्रीयुत भारतेन्द्रनाथ जी की सौ दौ सौ सम्पादकीय टिप्पणियों को संग्रहीत करके कुछ नहीं लिख सकते? यह बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य व सेवा होगी। भारतेन्द्र जी पर कुछ प्रेरक संस्मरण तो कभी फिर दिये जायेंगे पहले यह देखा जावेगा कि क्या आर्यसमाज में कोई '**भारतेन्द्र विषय**' पर लिखने को आगे आता है अथवा सब निष्प्राण हैं?

श्रीयुत गणेश गोयल जी को सुनकर मन चहक उठा- कुछ दिन पूर्व दिल्ली से प्रसिद्ध समाजसेवी श्री गणेश गोयल जी ने चलभाष पर यह महत्त्वपूर्ण आनन्ददायक सूचना दी कि आपने आर्यसमाज नयाबाँस की शताब्दी पर प्रकाशित 'अनादि नाद' ग्रन्थ श्रीयुत प्रकाश आर्य जी, गुरुकुल होशंगाबाद के आचार्य जी, श्रीमान् सेवामूर्ति सत्यसिन्धु जी आर्य तथा श्रीयुत आनन्द पुरुषार्थी जी आदि को भेंट स्वरूप भेजा था। उन्होंने ग्रन्थ के आर-पार जाकर ग्रन्थ पर अपनी-अपनी सम्मति श्री गणेश जी तक चलभाष पर पहुँचाई। श्री प्रकाश आर्य जी, श्री सत्यसिन्धु जी सबने इस ग्रन्थ का अत्यन्त प्रेम व श्रद्धा से स्वाध्याय करके अपने मनोभावों से गणेश जी को अवगत किया। गणेश जी ने उनकी प्रतिक्रिया पाकर प्रफुल्लित हृदय से इस सेवक को उनके विचारों की सब जानकारी दी। प्रकाश आर्य जी आदि ये गुणीजन पत्रों में अपनी प्रतिक्रिया प्रकाशित करवाते तो आर्यसमाज को अधिक लाभ मिल सकता या गणेश जी पत्रों में उनका मत एक लेख के रूप में दें तो आर्यजनता का विशेष हित हो।

मैं उनकी सम्मति यहाँ दूँ तो सम्भवत: अच्छा न समझा जावे। इन कृपालु महानुभावों ने मेरी लेखन-शैली, मेरी खोज, मेरी प्रामाणिकता, मेरे व्यापक स्वाध्याय पर दिल खोलकर अपने विचार दिये। शीर्षक-उपशीर्षक उनको अच्छे लगे। उनके स्नेह को पाकर मेरा रोम-रोम पुलकित हो गया। मेरा परिश्रम सफल हो गया। जिन्होंने मुझे बनाया और कुछ सिखाया मैं उनका ऋणी हूँ। खेद है कि नयाबाँस समाज ने ग्रन्थ एकदम सीमित संख्या में छपवाया है। लोग माँगते हैं। क्या उत्तर दिया जावे?

लाला लाजपतराय जी का व्यंग्य-बाण- अब हम लोग लाला जी के नाम की तोतारटन तो बहुत लगाते हैं, परन्तु उनके साहित्य से लाभ नहीं लेते। लाला जी ने कई महापुरुषों की जीवनियाँ लिखीं। उनकी भाषा व शैली में जोश था। सर्वप्रथम इटली के महापुरुषों मेज़िनि तथा गेरीबाल्डी की जीवनियाँ छपीं। छत्रपति शिवाजी, श्रीकृष्ण की बाद में। ऐसा क्यों? लालाजी ने लिखा कि देश की सोच, पहरावा, बोल-चाल सबकी रंगत विदेशी है सो मैंने विदेशी महापुरुषों को पहले लिया है। गोरे चले गये अब पहले से भी कहीं अधिक गोरों की दासता का प्रमाण हमारी सोच और व्यवहार से मिल रहा है। हम इसी में बड़प्पन मानते हैं।

महर्षि का जीवन उनके निन्दक व्यक्तियों, गोरों के नाम से आरम्भ किया जाता है। ऋषि के पथ पर गर्दन कटाने वाले, पेट में छुरा खाने वाले किसी बलिदानी आर्यपुरुष यथा प्राणवीर राजपाल, पं. लेखराम, शहीद श्यामभाई, मास्टर आत्माराम आदि के चित्र न देकर गोरी चमड़ीवालों को प्रमुखता देकर अपनी हीन भावना का प्रमाण देते हैं। लेखक तथा प्रकाशक दोनों इसी में अपना बड़प्पन मानते हैं। हम किसी विदेशी विचारक का फोटो देने के विरोधी नहीं। हम तो सर्वस्व वार देनेवाली अपने मिशन की **विभूतियों की उपेक्षा व तिरस्कार को देखकर आहत मन से यह रक्त-रोदन करते हैं।**

इसके साथ यह वाक्य भी जोड़ना अवाश्यक है कि अंग्रेजी साहित्य तथा गोरे-गोरे लोगों का साहित्य व इतिहास इन लेखकों व प्रकाशकों से कहीं अधिक हमने पढ़ा है। इस पाप-कर्म से बचिये।

जीवन के इस मोड़ पर इतना प्यार-सत्कार मिला- जीवन में सुख व दु:ख दोनों के आने वा जाने का मनुष्य

को कुछ पता नहीं चलता। यह सब ईश्वर ही जानता है। इसी प्रकार मृत्यु के आने का आभास भी कुछ विरले मुनि महात्माओं को ही पहले होता है। अब मेरे जीवन का नब्बेवाँ (९० वाँ) वर्ष जा रहा है। क्या पता कब शरीर छूट जावे? तथापि मैं लेखन कार्य उसी उत्साह से किये जा रहा हूँ जिस लगन व जोश से सन् १९५४ में कादियाँ में किया करता था। अभी इन दिनों मुझे विदेश से दो शुभ सूचनायें प्राप्त हुई हैं। जीवन के इस मोड़ पर **आर्यसमाज का एक नया स्वर्णिम अध्याय लिखकर-छपकर अति शीघ्र आ रहा है।** इसे पढ़ने व देखने का मुझे भी गौरव प्राप्त होगा। यह अध्याय किसी नेता या किसी सभा की कृपा से नहीं लिखा गया। यह महाप्रतापी पं. लेखराम, शूरता की शान श्रद्धानन्द और पं. नरेन्द्र जी के युवा सैनिकों के पुरुषार्थ का फल आर्य जाति चखेगी।

और शुभ सूचना- हरियाणा में विवाह आदि पर एक गीत गाया जाता था। आओ आज मिलकर यह तान सुनावें- ''**बधेवा ऋषि दयानन्द का**''

अर्थात् महर्षि दयानन्द को बधाई हो। पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के नामलेवा एक-एक आर्य को अभी-अभी प्राप्त यह शुभ सूचना देते हुए हमें हर्ष होता है कि दो वर्ष पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ 'जीवन-यात्रा स्वामी श्रद्धानन्द' ग्रन्थ का मराठी अनुवाद प्रेस में दिया जा रहा है। यह आज तक का स्वामी जी का सबसे बड़ा और सर्वाधिक खोजपूर्ण जीवन-चरित्र है। साढ़े छ: सौ पृष्ठ के इस ग्रन्थ के साथ लेखक का भी कुछ पठनीय प्राक्कथन दिया जावेगा। इस मराठी संस्करण के अनुवाद का सारा श्रेय विदेश में बैठे आर्यवीरों को जाता है। उन्हीं के उद्योग सहयोग से चुपचाप यह कार्य सिरे चढ़ने वाला है। धीर-धीरे बड़े-बड़े नेताओं को भी इस ग्रन्थ रत्न के दर्शन हो ही जावेंगे।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जीवन की साँझ में इस ग्रन्थ का यह लेखक भी इस मराठी संस्करण को देखने के लिये उत्सुक है।

पं. चमूपति के 'हृदय के उद्‌गार और अंगार'- एक नये ग्रन्थ का सृजन, सम्पादन आज २१ अगस्त को इस लेखक ने आरम्भ कर दिया है। भारत में स्वराज्य-संग्राम के इतिहास से जुड़े कई स्मारक हैं। उनमें 'जलियाँवाला बाग़ हत्याकाण्ड' का स्मारक भी एक है। देशभर में ऐसे किसी भी स्मारक में सत्ताधारी दलों ने आर्यसमाज का यथोचित उल्लेख नहीं होने दिया। अमृतसर के इस स्मारक में जहाँ कई आर्य महापुरुषों के फोटो दिये हैं वहाँ एक दीवार पर इस हत्याकाण्ड विषयक पं. चमूपति जी की एक कविता की पंक्तियाँ भी लिखी मिलती हैं, परन्तु नीचे पण्डित जी का नामोल्लेख नहीं किया गया। कुछ अशुद्धियाँ भी हैं। ये पंक्तियाँ हमारी एक पुस्तक से उनको प्राप्त हुईं। श्री धर्मेन्द्र जी जिज्ञासु ने अमृतसर रहते हुए दीवार पर लिखी कविता की अशुद्धियाँ दूर करवाने तथा पण्डित जी का नीचे नाम लिखवाने के लिये भागदौड़ तो की। वहाँ के आर्यों को भी मैंने प्रेरित किया कि स्मारक ट्रस्टवालों से मिलकर यह कार्य करवा लें, परन्तु धर्मेन्द्र जी के वहाँ से आ जाने से सब निष्क्रिय हो गये।

पण्डित जी का यह अत्युत्तम ग्रन्थ हमारे कृपालु, ऋषि मिशन के अथक सेवक श्री जितेन्द्र कुमार जी गुप्त एडवोकेट ही बढ़िया कागज पर छपवा रहे हैं। आपने पहले भी 'हृदय की भाषा' प्रकाशित करवाई थी। उसका भी इसमें समावेश होगा। स्वराज्य-संग्राम विषयक आपकी कई अलभ्य रचनायें इसमें दी जा रही हैं। ऋषि दयानन्द, वैदिक धर्म तथा आर्य हुतात्माओं पर लुप्त हो रही बहुत सारी सामग्री खोजकर इसमें दी जा रही है। हम देखेंगे कि भवनों के प्रेमी पं. लेखराम के मिशन के प्रसार के लिये इस कार्य में कुछ सहयोग करते हैं या बातें ही बनाते हैं।

यह नहीं भूलना चाहिये कि पं. चमूपति जी आर्यसमाज ही नहीं देश के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक थे। वह चार भाषाओं के कवि थे। केवल उर्दू, हिन्दी के ही कवि नहीं थे। पाकिस्तान के विचार के जन्मदाता डॉ. इकबाल भी उनकी काव्यकला, विद्वत्ता तथा मधुर वाणी के प्रशंसक थे। एक बार डॉ. इकबाल पण्डित जी से मिलने कुछ चर्चा करने उनके निवास पर भी आये थे। सज्जनो! इस पुस्तक को ऐसी-वैसी मत समझें।

''जिगर का ख़ून दे दे कर ये पौधे मैंने पाले हैं''

उनके स्मारक कहाँ हैं?- काँग्रेस हो अथवा भाजपा, सपा हो अथवा अकाली या द्रमुक दल जिसके हाथ में भी

सत्ता आये वह अपने-अपने दल के, अपनी-अपनी रुचि के, पसन्द के नेताओं के स्मारक बनवाता व शताब्दियाँ आदि दिन मनाता है। उ. प्र. में स्वराज्य संग्राम में फाँसी पाने वाले पहले क्रान्तिकारी बिस्मिल, रोशनसिंह आदि क्रान्तिवीर थे। जहाँ ठाकुर रोशनसिंह को फाँसी दी गई वहाँ पं. नेहरू की माता के नाम पर हमने कॉलेज बना देखा। श्री चन्द्रशेखर आजाद के नाम पर उसके बलिदान-स्थल पर हमने कुछ भी न देखा। अब योगी आदित्यनाथ जी ने कोई स्मारक खड़ा करवा दिया है, यह भी सुनने को नहीं मिला। बिस्मिल जैसा बलिदानी जिसका गीत 'सरफ़रोशी की तमन्ना' गाते हुए वीरवर भगतसिंह की टोली फाँसी पर चढ़ गई। उसके नाम पर भी हमने गोरखपुर में एक पार्क ही देखा। लॉर्ड हार्डिंग बम्ब केस के वीर क्रान्तिकारियों ने जहाँ प्राण दिये वहाँ नेहरू युग में मौलाना आज़ाद मेडिकल कॉलेज दिल्ली में बनवा दिया गया।

शताब्दी गई- लाला लाजपतराय, वीर अजीतसिंह के देशनिकाला की शताब्दी निकल गई। उनका शताब्दी-पर्व किस दल को याद आया? सन् १९१९ में दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गोराशाही की संगीनों से सीना अड़ाकर विश्व के स्वाधीनता सेनानियों में एक नया कीर्तिमान रचा। विदेश में बैठे लाला लाजपतराय यह सुनकर झूम उठे। प्रधानमन्त्री मोदी को यह शताब्दी किसी ने याद ही न करवाई। विदेशी शासकों ने ही हमारा इतिहास नहीं बिगाड़ा-अपनों ने भी कोई कमी नहीं छोड़ी।

हिन्दुओं के रोग व दुर्बलतायें- निर्बल शिशु को शीत ऋतु में गर्म-गर्म स्वैटर, कोट, गर्म टोपी, गर्म जुराबें पहनाकर यदि कोई माता यह मानती है कि मैंने अपने बच्चे की personality (व्यक्तित्व) को निखार दिया है तो उसे बुद्धिमती कौन कहेगा। जब तक किसी की निर्बलता व रोग-निवारण के उपाय न किये जावें व्यक्तित्व में क्या निखार आयेगा?

वीर सावरकर जी को कालेपानी से मात्र एक पत्र वर्ष भर में अपने घर लिखने की अनुमति थी। उसमें वह किसी पठनीय पुस्तक भेजने की माँग किया करते थे। ऐसे एक पत्र में आपने घरवालों को लिखा मुझे वेदान्त (जगत् मिथ्या है वाला नवीन वेदान्त) की कोई पुस्तक मत भेजना। क्यों न ऐसी पुस्तक भेजना?

अंग्रेजी में लिखे गये उस पत्र में वीर सावरकर ने इतिहास का एक निचोड़ दिया है कि **काशी वेदान्त का गढ़ रहा है और काशी ने देश को एक भी हुतात्मा नहीं दिया।** काशी में स्टेशन से बाहर निकलते एक हुतात्मा की भव्य मूर्ति देखकर मन गद्गद् होता है। यह प्रतिमा काशी में जन्मे किसी क्रान्तिकारी की नहीं है। यह प्यारी प्रतिमा ''वैदिक सन्ध्या'' नित्यप्रति करने वाले चन्द्रशेखर आजाद की है। उसकी वैदिक सन्ध्या की प्रति गोराशाही को कुदसिया घाट में उसके जिस भक्त से छापेमारी में मिली उसे भी छः मास का कारावास का दण्ड मिला।

काशी में जो रोग पहले थे वे आज भी हैं। भैरोंबाबा के मन्दिर में दलितों को प्रवेश दिलवाने विनोबा जी लेकर गये। तिलकधारी पुजारियों ने सबकी धुनाई-पिटाई कर दी। किसी हिन्दू संगठन ने इस घृणित कर्म की निन्दा न की। एक आर्यसमाज ही गर्जना करनेवाला था। मैं तब २३ वर्षीय विद्यार्थी था। मैंने 'आर्यवीर' साप्ताहिक में इसकी निन्दा में एक जोशीला लेख लिखा था। करपात्री बाबा ने पुराने मन्दिर के भ्रष्ट होने के कारण उससे थोड़ी दूरी पर एक नया मन्दिर 'भोले शिवजी' का बनवा दिया। उसमें कोई दलित घुस कर तो दिखावे। उसकी पिटाई-कुटाई के मैंने वहाँ पूरे और पक्के प्रबन्ध देखे।

जिन जाति-अभिमानी ब्राह्मणों ने वहाँ ऋषि दयानन्द पर बार-बार आक्रमण किये, जीवित अजगर तक फेंका, उनका जातिवाद आज भी दनदना रहा है। वहाँ पर महामना मालवीय जी की प्रतिमा को तो दूध से स्नान करवाया जाता है, परन्तु किसी दलित अनाथ को किसी मन्दिर में दूध की एक कटोरी किसी ने कभी पिलाई? स्त्रियों को क्या काशी विश्वविद्यालय में आज वेद पढ़ाया जाता है?

शंकराचार्य कई हैं। श्री स्वरूपानन्द जी तो सेक्युलर दिग्विजय के शंकराचार्य हैं। प्रधानमन्त्री या हिन्दू, हिन्दू की, राम- मन्दिर की दुहाई देकर सनातन, अनादि हिन्दू संस्कृति की दुहाई देनेवाले हिन्दू प्रवक्ता गंगा-तट पर किसी दलित धर्मप्रेमी से जल दिलवाकर शंकराचार्य जी को आचमन करवाकर तो दिखावें। अच्छा होता राम-मन्दिर के शिलान्यास के समय माननीय राष्ट्रपति

सम्मानपूर्वक मञ्च पर विराजमान होते। शतियों का कलङ्क तो मिट जाता। वञ्चित कोई भी हो उसको सम्मान मिले, अधिकार मिलें। परन्तु भाजपा में भी नेता, विधायक और सांसद अपनी-अपनी जाति के लिये सुविधायें माँग रहे हैं।

नित्य नये भगवान् गढ़े जा रहे हैं। विघ्ननाशक गणेश जी के गीत गाकर फिर उन्हें जल में डुबोया जाता है। ये पाषाण मूर्तियाँ कभी अपनी रक्षा न कर सकीं। ये कश्मीरी पण्डितों को न बचा सकीं। ये मच्छर की टाँग तक न तोड़ सकीं। ये किसी की रक्षा क्या करेंगी? इन रोगों के विरुद्ध कौन युद्ध लड़ेगा? सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, एक ओंकार की उपासना का राग कौन सुनायेगा। जब तक ये रोग व्याप्त हैं, बातें बनाने से, आश्वासन देने से हिन्दू का न तो उपकार होगा और न ही रक्षा हो सकती है। इस समय तो हिन्दू के शुभचिन्तकों का हृदय यही कहता है-

बढ़ रहे भगवान् तेरे घट रही सन्तान तेरी

सृष्टि-नियम सर्वत्र वही है। नया सृष्टि-नियम न कोई बना और न सुना परन्तु हिन्दू साईं बाबा, सत्य साईं बाबा- बर्फ़ानी बाबा तक नये-नये भगवान् देता जा रहा है। यह इसका सबसे घातक रोग है।

'चाहियेवाद'- गत साठ वर्षों में सार्वजनिक जीवन में ऐसे कई बुद्धिमान सुशिक्षित व्यक्ति मिले व देखे जो समाज को सुदृढ़ बनाने व धर्मप्रचार के लिये सुझाव देने, योजनायें बनाने-यह करना चाहिये, ऐसे करना चाहिये, सुझाने में अपना उदाहरण आप थे। स्वयं कार्यक्षेत्र में उतरकर दिखाने का उनके पास कतई समय नहीं था। यह स्थिति देखकर आचार्य सत्यप्रिय जी हिसार वाले कहा करते थे, **''समाज में बहुत से लोगों को चाहियेवाद का भयङ्कर रोग चिपका हुआ है।''** आप करते कुछ नहीं, समय देते नहीं। अपने परिवार से एक भी धर्मात्मा, विद्वान्, कर्मठ मिशनरी न दे सके। चाहियेवाद वालों से भी समाज को बचाना होगा।

क्या मिला?- जीवित, जाग्रत संस्थायें और संगठन जब कोई आन्दोलन चलाते हैं, अभियान छेड़ते हैं तो आन्दोलन की समाप्ति पर क्या खोया और क्या पाया का लेखा-जोखा करते हैं। हरियाणा में गत दिनों एक लम्बे आन्दोलन में हमारे आर्यवीरों ने विजय प्राप्त की तो स्वाभाविक है कि हमारे सामने भी यही प्रश्न आता कि हमें क्या मिला। आर्यसमाज के इतिहासकार और गम्भीर विचारक पं. चमूपति जी ने लिखा है, आन्दोलन छेड़ने से, अग्निपरीक्षा से खरे-खोटे की पहचान हो जाती है। संगठन को नये-नये कार्यकर्त्ता कर्णधार मिलेंगे तब कोई निष्कर्ष निकालकर सबके सामने रखा जावेगा।

अब बहुत कुछ पता चल गया तो आज संक्षेप से इसकी एक देन पर कुछ निवेदन किया जाता है। श्री अमित शर्मा यहाँ आये। कोई डेढ़ दिन यहाँ रहे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के सम्बन्ध में प्रश्न पूछते रहे- वे कैसे थे? उनका तेजस्वी मुखड़ा कैसा था? उनके व्यक्तित्व में इतना आकर्षण किस कारण था। छोटे-बड़े से उनका ऐसा उत्तम व्यवहार अब किस नेता में है। उनके तप, निडरता, शूरता, बलिदान के भाव के प्रसंग ही पूछते रहे। वैसे आपके पिताजी स्वामी सर्वानन्द जी के शिष्य हैं। मैंने यह अनुभव किया कि 'अमित' अब इस आन्दोलन की भट्टी से 'स्वामी स्वतन्त्रानन्दमय' होकर जो निकला है, यह हमारी बहुत बड़ी प्राप्ति है। मैं उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर तो देता रहा, परन्तु वह कैसे थे? इस प्रश्न का उत्तर न दे पाया। अब वैसा कोई है ही नहीं तो मैं बताऊँ क्या? -**अबोहर, पंजाब।**

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

०६ अक्टूबर २०२०	-	डॉ. धर्मवीर स्मृति व्याख्यानमाला
२० से २२ नवम्बर २०२०	-	ऋषि मेला (१३७वाँ बलिदान समारोह)

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

मूर्त्तिपूजा-विवेचन

(सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास के आधार पर)

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम.ए.

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

भारत जैसे उन्नत, सब विधि सम्पन्न राष्ट्र के पतन का बड़ा कारण है मूर्त्तिपूजा। अज्ञान, अन्धकार, अंध-विश्वास, गुरुडम की यह पहली सीढ़ी मनुष्य को लक्ष्य से भटकाने का प्रबल साधन है। प्रसिद्ध विचारक और विद्वान् लेखक पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम.ए. ने सरल, सफल और हृदयग्राही ढंग से इस 'विष' को छोड़ने की प्रेरणा की है। -सम्पादक

प्रश्न- देखो! वेद अनादि हैं, उस समय मूर्ति का क्या काम था? क्योंकि पहले तो देवता प्रत्यक्ष थे! यह रीति तो पीछे से तन्त्र और पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून हो गया तो परमेश्वर को ध्यान में नहीं ला सके और मूर्त्ति का ध्यान तो कर सकते हैं, इस कारण अज्ञानियों के लिये मूर्त्तिपूजा है, क्योंकि सीढ़ी-सीढ़ी से चढ़े तो भवन पर पहुँच जाय। पहली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं चढ़ सकता। इसलिये मूर्त्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजते-पूजते जब ज्ञान होगा और अन्त:करण पवित्र होगा तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा। जैसे लक्ष्य का मारने वाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली या गोला आदि मारता-मारता पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना मार सकता है वैसे स्थूल मूर्ति की पूजा करता-करता पुन: सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियाँ गुड़ियों का खेल तब तक करती हैं कि जब तक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं, इत्यादि प्रकार से मूर्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं।

उत्तर- जब वेदविहित धर्म और वेदविरुद्धाचरण में अधर्म है तो पुन: तुम्हारे कहने में भी मूर्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो-जो ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं, उन-उन का प्रमाण करना, जानो नास्तिक होना है। सुनो-

नास्तिको वेदनिन्दक:।। १ ।। (मनु: २/११)

या वेद बाह्या: स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टय:।
सर्वास्ता निष्फला: प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ता: स्मृता:।।२।।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च।।३।।

मनु. अ. १२ [९५-९६]

मनु जी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है, वह नास्तिक कहाता है।।१।। जो ग्रन्थ वेदबाह्य, कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दु:ख सागर में डुबाने वाले हैं, वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोक में दु:खदायक हैं।।२।। जो इन वेदों के विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं, वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है।। ३।। इसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनि महर्षि पर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध को न मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्योंकि वेद सत्यार्थ का प्रतिपादक है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं, वे वेदविरुद्ध होने से झूठे हैं, वे वेद से विरुद्ध चलते हैं। इनमें कही हुई मूर्ति-पूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु

जो कुछ ज्ञान है सो भी नष्ट हो जाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा-संग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्ति-पूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी लाया जा सकता है? नहीं! नहीं!! मूर्ति-पूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है, जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है। पुन: उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है। हाँ, छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से, सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं। जैसी कि ऊपर घर में जाने की नि:श्रेणी होती है। किन्तु मूर्तिपूजा करते-करते ज्ञानी तो न हुआ, प्रत्युत सब मूर्तिपूजक अज्ञानी रहके मनुष्य-जन्म व्यर्थ खोके बहुत से मर गये और जो अब हैं वा होंगे, वे भी मनुष्य जन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थ नष्ट हो जायेंगे। मूर्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्ष्यवत् नहीं, किन्तु धार्मिक, विद्वान् और सृष्टि-विद्या है। इसको बढ़ाता-बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है और मूर्ति गुड़ियों के खेलवत् नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना, गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा।

(सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ११)

उपासकों के दो वर्ग हैं। एक जो मूर्तिपूजा को उपासना का साधन समझते हैं और दूसरा वह वर्ग है जो मूर्तिपूजा को न केवल ईश्वरोपासना का ही बाधक समझता है अपितु सब प्रकार की मनुष्य की उन्नति का घोर बाधक मानता है।

ऋषि दयानन्द ने ऊपर दिये प्रश्न और उत्तर में समासरूप में दोनों पक्षों की युक्तियों को बड़ी उत्तमता से वर्णन कर दिया है। इनमें उन सब युक्तियों का समावेश है जो समय-समय पर मूर्तिपूजक विद्वान् दिया करते हैं। आधुनिक काल में मूर्तिपूजा के अभ्यस्त कुछ कुछ साइंस और दर्शन के सुविज्ञ भी अपनी चिरकाल की प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर मूर्तिपूजा को संसार में जीवित रखने के लिए बाल की खाल निकालते पाये जाते हैं। अधिकांश पुजारियों की जीविका ही मूर्तिपूजा पर चलती है। ये पुजारी न केवल सच्ची पूजा (ईश्वरोपासना) के ही 'अरि' अर्थात् शत्रु हैं अपितु स्वयं निठल्ला जीवन व्यतीत करने और मूर्तिपूजकों की कमाई को अनुचित रीति से खाने के कारण मानवसमाज के भी वैरी हैं। इसलिए मूर्तिपूजा केवल अज्ञानियों के लिए ही नहीं है अपितु बड़े से बड़े विद्वान् भी इस कीचड़ में फँसे पाये जाते हैं। स्वामी दयानन्द ने इसको खाई कहा है। यह सत्य ही है, इसमें चकनाचूर होते स्वामी दयानन्द ने भी बड़े-बड़े पण्डितों को देखा और आप भी देख सकते हैं। किसी मन्दिर में चले जाइये। बड़े-बड़े विद्वान् प्रोफेसर, जज, मिनिस्टर, संस्कृतज्ञ, महावैयाकरण, नैयायिक, वेदान्ती, याज्ञिक, वकील-बैरिस्टर नंगे पैरों, हाथों में माला लिये उसी प्रकार मूर्ति के समक्ष दण्डवत् करते पाये जायेंगे जैसे गाँवों के अपढ़ अज्ञानी। यदि मूर्तिपूजा ब्रह्म-प्राप्ति की पहली सीढ़ी होती तो आज इन वृद्ध और समृद्ध जनों को पत्थरों के समक्ष सिर नवाने की आवश्यकता न होती। आज बड़े-बड़े महापुरुषों की अस्थियाँ गंगा में प्रवाहित होने के लिये जाती हैं कि गंगामाई उनको स्वर्ग पहुँचा देगी। स्वामी दयानन्द ने तो जड़ गंगा द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा नहीं की थी। क्या काशी के महापण्डित जिनको अपनी परा और अपरा विद्याओं का गर्व है, विश्वनाथ की मूर्ति के समक्ष माथा टेकते हुये गुड़ियों की उपमा को भूल जाते हैं? क्या कोई प्रौढ़ा स्त्री छोटी लड़कियों की भाँति अपने पति के स्थान में और उसके समक्ष एक गुड्डे को आरोपित करना पसन्द करेगी? क्या समग्र आयु मूर्तियाँ पूजते भी अभी इनको इतना ज्ञान नहीं हुआ कि जिस ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वे देवताओं की जड़ मूर्तियों का सहारा तकते हैं, उनके भवन में, उनके शरीर और मन में भी ईश्वर विद्यमान है। मूर्तिपूजा रूपी खाई में जो एक बार गिरा उसका निकलना कठिन है, यही तो ऋषि दयानन्द ने कहा था। जिन बौद्ध और जैनियों ने ईश्वर के कर्तृत्व से भी इन्कार कर दिया, वह भी मूर्तिपूजा के गढ़े में पड़कर जैन मन्दिरों और बौद्ध मठों में जड़ मूर्तियों में मान्यता मानते देखे जाते हैं। जो ईसाई और मुसलमान मूर्तिभंजक कहलाना पसन्द करते हैं वे भी अनेक कष्ट सहकर मक्के के मन्दिर में काले पत्थर को चूमते और मन्दिर की परिक्रमा करते तथा ईसा आदि की मूर्तियाँ पूजते पाये जाते हैं। इसका एक मुख्य कारण यही है कि उन्होंने मूर्तिपूजा को ब्रह्म-उपासना

का साधन या स्थानापन्न समझ रखा है। वे समझते हैं कि जब पत्थर का दर्शन ही देव-दर्शन है तो देव-दर्शन के लिये योग का साधन व्यर्थ है।

स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि ब्रह्म-प्राप्ति की पहली सीढ़ी है अक्षराभ्यास अथवा विद्या-प्राप्ति। इस अर्थ में तो प्रत्येक छोटी-बड़ी पाठशाला मन्दिर है। वहाँ ज्ञान की वृद्धि होती है। प्रत्येक विज्ञान-प्रयोगशाला शिवालय है क्योंकि यहाँ परम कल्याण के दाता शिव के नियमों का परिज्ञान होता है। जितना धन और श्रम एक छोटे देवालय पर होता है, उतना एक पाठशाला के लिए पर्याप्त है। रामेश्वर या श्रीरङ्गम के मन्दिर पर जितना व्यय होता है उतने से विश्वविद्यालय चल सकते हैं, परन्तु जनता तथा नेताओं की शक्ति का परिशोषण तो मूर्तिपूजा कर रही है। जनता की गाढ़ी कमाई तो पाषाणमय कल्पित देवी-देवताओं के शृङ्गार और उनके खाऊ पुजारियों की उदरपूर्ति में ही लग जाती है। एक बार एक दक्षिणी प्रसिद्ध मन्दिर के एक अध्यक्ष ने मुझसे प्रश्न किया था कि हमारे विशाल मन्दिरों को देखकर क्या अनुमान किया। मैंने उत्तर दिया, ''They are physicaly dark, morally dark and socially dark. अर्थात् यह प्राकृतिक-तमोमय, आचार-तमोमय और सामाजिक अन्धकार से भरपूर हैं। उन्होंने पूछा कैसे?'' मैंने कहा, ''प्रतिमा-ग्रह में जब तक दीपक न जलाओ, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। प्रतिमाओं के निकट रहने वाले पुजारी भ्रष्टाचार के लिये प्रसिद्ध हैं और अस्पृश्यता का तो इतना प्राबल्य है कि कोई उपासक ब्रह्म-प्राप्ति तो क्या साधारण मूर्तिदर्शन भी नहीं कर सकता।'' दरिद्र से दरिद्र के पास ईश्वर है, परन्तु मूर्तियों के स्थान से तो ईश्वर अत्यन्त दूर है।

स्वामी दयानन्द ने मूर्तिपूजा में सोलह दोष गिनाये हैं। ये सब देशों और युगों की मूर्तिपूजा में पाये जाते हैं। सब देश के विद्वानों ने मूर्तिपूजा के विरुद्ध आवाज उठाई। जॉन विक्लिफ ने जो ईसाइयों की मूर्तिपूजा का पहला विरोधी था प्राय: उसी प्रकार के दोष बताये हैं जो सत्यार्थप्रकाश में दिये हुए हैं। गुरुनानक आदि ने मूर्तिपूजा का विरोध किया। हिन्दुओं में एक पद प्रचलित है- ''**आत्मा में गंग बहे, क्यों न तू न्हाउ रे।**'' परन्तु इन सुधारकों ने स्वामी दयानन्द के समान रोग के मूल कारण पर प्रहार नहीं किया। लूथर ने मूर्ति-खण्डन किया, परन्तु ईसा के अवतार का खण्डन नहीं किया। सन्त लोगों के शिष्य गुरुओं की मूर्तियों को पूजते रहे। जहाँ-जहाँ अवतारवाद और गुरुडम है, वहाँ-वहाँ मूर्तिपूजा रहेगी। **स्वामी दयानन्द को मूर्तिपूजा का इतना कटु अनुभव था कि न उन्होंने मठ बनाया, न अपनी समाधि या स्मारक बनाने की अनुमति दी। आर्यसमाज के नेताओं को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये।**

बहुत से लोग भक्ति और श्रद्धा के आवेश में आकर ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में अनेक लोकोत्तर चमत्कारों को सम्बद्ध करते हैं और यह प्रवृत्ति बहुत-सी घटनाओं को गढ़ने में लगी हुई है। ऐसे लोगों का विचार है कि ऐसा करने से आर्यसमाज का प्रचार बढ़ेगा। संभव है कि उनकी आशायें पूरी हो जायें, परन्तु मूर्तिपूजा के प्रचार में इससे सहायता मिलेगी। जिस रहस्यवाद का इस युग में प्रचार आरम्भ हुआ है उसको देखते यह प्रतीत होता है कि २०६३ ई. तक यह नौबत आ जायेगी कि आर्या ललनाएँ अपने बच्चों को टंकारा या अजमेर में मुण्डन के लिए ले जाया करेंगी और दयानन्द बाबा से मिन्नत माँगा करेंगी। बर्मा और स्याम के बौद्ध मन्दिरों में मैंने बड़े-बड़े बौद्धों को ऐसा करते देखा है। यदि ऐसा हुआ तो स्वामी दयानन्द की सम्पूर्ण तपस्या निरर्थक हो जायगी और स्वामी दयानन्द के विषय में अगले सुधारक वैसी ही आलोचना करेंगे जैसी स्वामी दयानन्द ने 'नारायणमत' आदि की है। आर्यसमाज के अगले नेताओं की चाल ढाल ही बता सकेगी कि नदी का प्रवाह किधर को जाता है।

स्वामी विवेकानन्द आदि आधुनिक विद्वानों तथा कवीन्द्र टैगोर आदि के कलात्मक ग्रन्थों के आधार पर कुछ मूर्तिपूजा के संपोषक लोगों ने कुछ नवीन युक्तियाँ भी गढ़ ली हैं जिनका मूर्तिपूजा से केवल दूरस्थ सम्बन्ध है और उनसे न तो ईश्वर-प्राप्ति में सहायता मिलती है न मूर्तिपूजा के दोषों का ही निराकरण होता है। न इनसे उच्च कलाओं का ही उपयोग होता है। जगन्नाथपुरी के मन्दिर की अश्लील मूर्तियाँ कलात्मक होते हुये भी आचार-पतन का कारण होती हैं। वह कलाशास्त्र भी क्या जो आचार-

शास्त्र या जीवन के अन्य उपयोगी विभागों से समन्वित न हो सके। सारांश यह है कि मूर्तिपूजा एक भयानक रोग है। इससे मानव जाति को लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की यातनायें झेलनी पड़ी हैं। विद्वानों को चाहिये कि इस रोग के उन्मूलन का उपाय करते रहें।

पितृयज्ञ-श्राद्ध और तर्पण

(सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास के आधार पर)

श्री जगदेव सिंह 'सिद्धान्ती'

श्राद्ध किसका करें जीवित का या मृतक का? इस प्रश्न के उत्तर में पौराणिक पक्ष है कि मृतक का श्राद्ध करो और जीवित की उपेक्षा। आर्यसमाज जीवित पितरों की श्रद्धा-भक्ति की ओर सभी को प्रेरित करता है। विद्वान् लेखक ने विषय पर शास्त्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।- सम्पादक

पितृ यज्ञ के दो भेद हैं-एक तर्पण और दूसरा श्राद्ध।

येन कर्मणा विदुषो देवानृषीन् पितृंश्च तर्प्पयन्ति सुखयन्ति तत् तर्प्पणम् तथा यत्तेषां श्रद्धया सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धं वेदितव्यम्।

तर्पण उसे कहते हैं जिस कर्म से विद्वान्रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं। उसी प्रकार उन लोगों का श्रद्धा से सेवन करना है, सो श्रद्धा कहाता है।

तदेतत्कर्म विद्वत्सु विद्यमानेष्वेव घटते, नैव मृतकेषु। कुतः? तेषां सन्निकर्षाभावेन सेवनाशक्यत्वात्। मृतकोद्देश्येन यत्क्रियते नैव तेभ्यस्तत्प्राप्तं भवतीति व्यर्थापत्तेश्च। तस्माद्विद्यमानाभिप्रायेणैतत्कर्मोपदिश्यते। सेव्यसेवकसन्निकर्षात्सर्वमेतत्कर्तुं शक्यते।

यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता है, मृतकों में नहीं, क्योंकि उनकी प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना दुर्लभ है। इसी से उनकी सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती, किन्तु जो उनका नाम लेकर देवे वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता। इसलिये मृतकों को सुख पहुँचाना सर्वथा असम्भव है, इसी कारण विद्यमानों के अभिप्राय से तर्प्पण और श्राद्ध वेद में कहा है। सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करने वाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम हो सकता है।

पंचमहायज्ञविधि।।

'पितृयज्ञ'- अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने-पढ़ाने हारे, पितर माता-पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों को सेवा करनी।

श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है **'श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्'** जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया उसका नाम श्राद्ध है और **'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन् तत्तर्पणम्'**। जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता-पिता आदि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिये है मृतकों के लिये नहीं।

'विद्वाꣳसो हि देवाः' यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं। जो साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के जाननेवाले हों उनका नाम 'ब्रह्मा', जो उनसे न्यून हों उनका भी नाम 'देव' अर्थात् विद्वान् है। उनके सदृश विदुषी उनकी स्त्री ब्राह्मणी 'देवी' और उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों उनकी सेवा करना है, उसका नाम 'श्राद्ध' और 'तर्पण' है।

कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना है अर्थात् जिस-जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे, उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहाता है।

सत्यार्थप्रकाश-चतुर्थ समुल्लास।।

(प्रश्न) ''गया में श्राद्ध करने से पितरों का पाप छूटकर वहाँ के श्राद्ध के पुण्य प्रभाव से पितर स्वर्ग में जाते और पितर अपना हाथ निकाल कर पिण्ड लेते हैं क्या यह भी बात झूठी है?

(उत्तर) सर्वथा झूठ जो वहाँ पिण्ड देने का वही प्रभाव है तो जिन पण्डों को पितरों के सुख के लिए लाखों रुपये देते हैं, उनका व्यय गयावाले वेश्यागमनादि पाप में करते हैं, वह पाप क्यों नहीं छूटता और हाथ निकलता आजकल कहीं नहीं दीखता, बिना पण्डों के हाथों के

यहाँ। यह कि कभी किसी धूर्त्त ने पृथिवी में गुफा खोद उसमें एक मनुष्य बैठा दिया होगा पश्चात् उसके मुख पर कुश बिछा दिया होगा और उस कपटी ने उठा लिया होगा। किसी आँख के अन्धे गाँठ के पूरे को इस प्रकार ठगा हो तो आश्चर्य नहीं।''

''श्राद्ध, तर्पण, पिण्डदान उन मरे हुए जीवों को तो नहीं पहुँचता, किन्तु मृतकों के प्रतिनिधि पोप जी के घर, उदर और हाथ में पहुँचता है, जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं वह तो पोप जी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुँचती है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती पुनः किसकी पूँछ पकड़ कर तरेगा और हाथ तो यहीं जलाया या गाड़ दिया तो फिर पूँछ को कैसे पकड़ेगा?

सत्यार्थप्रकाश- ११ समुल्लास।।

ये सत्यविज्ञान दानेन जनान् पान्ति रक्षन्ति ते पितरो विज्ञेयाः।

जो सत्यविज्ञान-दान से जनों का पालन करते हैं वे पितर हैं।

मनु ने भी कहा है-

वसून् वदन्ति तु पितृन् रुद्राँश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहाँश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी।।

मनु. अध्याय ३, श्लोक २८४

पितरों को वसु, पितामहों को रुद्र और प्रपितामहों को आदित्य कहते हैं, यह सनातन श्रुति है।

पञ्चमहायज्ञ विधि।।

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।।

यजुर्वेद अ. १९। म. ५८।।

ये (सोम्यासः) सोमगुणाः शान्ताः, सोमबल्ल्यादिरसनिष्पादने चतुराः (अग्निष्वात्ताः) अग्निः परमेश्वरो ऽभ्युदयाय सुष्ठुतया आत्तो गृहीतो यैस्ते ऽग्निष्वात्ताः, तथा होमकरणार्थं, शिल्पविद्यासिद्धये च भौतिको ऽग्निरात्तो गृहीतो यैस्ते पितरो विज्ञानवन्तः पालकाः सन्ति (आयन्तुः नः) ते अस्मत्समीपमागच्छन्तु। वयं च तत्समीपं नित्यं गच्छेम। (पथिभिर्देव.) तान्विद्वन्मार्गैर्दृष्टि पथमागतान् दृष्ट्वा ऽभ्युत्थाय, हे पितरो! भवन्त आयन्त्वित्युक्त्वा, प्रीत्या ऽऽसनादिकं निवेद्य, नित्यं सत्कुर्याम। (अस्मिन्.) हे पितरोऽस्मिन् सत्काररूपे यज्ञे (स्वधया) अमृतरूपया सेवया (मदन्तो) हर्षन्तो अस्मान् रक्षितारः सन्तः सत्यविद्यामधिब्रुवन्तूपदिशन्तु।।

पितृ शब्द से सबके रक्षक श्रेष्ठ स्वभाववाले ज्ञानियों का ग्रहण होता है, क्योंकि जैसी रक्षा मनुष्यों की सुशिक्षा और विद्या से हो सकती है वैसी दूसरे प्रकार से नहीं। इसलिए जो विद्वान् लोग ज्ञानचक्षु देकर उनके अविद्यारूपी अन्धकार के नाश करने वाले हैं उनको 'पितर' कहते हैं। उनके सत्कार के लिये मनुष्य-मात्र को ईश्वर की यह आज्ञा है कि उन आते हुए पितर लोगों को देखकर अभ्युत्त्थान अर्थात् उठके प्रीतिपूर्वक कहें कि आइये, बैठिये, कुछ जलपान कीजिये और खाने-पीने की आज्ञा दीजिये। पश्चात् जो-जो बातें उपदेश करने के योग्य हैं सो-सो प्रीतिपूर्वक समझाइये कि जिससे हम लोग भी सत्यविद्यायुक्त होके सब मनुष्यों के पितर कहलावें और सदा ऐसी प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर! आपके अनुग्रह (सोम्यासः) जो शील स्वभाव और सबको सुख देनेवाले लोग, (अग्निष्वात्ताः) अग्नि नाम परमेश्वर और रूप गुण वाले भौतिक अग्नि को अलग-अलग करनेवाली विद्युतरूप विद्या को यथावत् जानने वाले हैं, वे इस विद्या और सेवायज्ञ में (स्वधया मदन्तः) अपनी शिक्षा, विद्या के दान और प्रकाश से अत्यन्त हर्षित होके (अवन्त्वस्मान्) हमारी सदा रक्षा करें तथा उन विद्यार्थियों और सेवकों के लिये भी ईश्वर की आज्ञा है कि जब-जब वे आवें वा जावें तब-तब उन-उनको उत्त्थान, नमस्कार और प्रियवचन आदि से सन्तुष्ट रखें तथा फिर वे लोग भी अपने सत्यभाषण से निर्वैरता और अनुग्रह आदि सद्गुणों से युक्त होकर अन्य मनुष्यों को उसी मार्ग में चलावें और आप भी दृढ़ता के साथ उसी में चलें। ऐसे सब लोग छल और लोभादिरहित होकर परोपकार के अर्थ अपना सत्य व्यवहार रखें। (पथिभिर्देवयानैः) उक्त भेद से विद्वानों के दो मार्ग होते हैं। एक देवयान और दूसरा पितृयान अर्थात् जो विद्या मार्ग है वह देवयान और जो कर्मोपासना मार्ग है वह पितृयान कहाता है। सब लोग इन दोनों प्रकार के पुरुषार्थ को सदा करते रहें।''

पदार्थ- (आ) (यन्तु) आगच्छन्तु (नः) अस्माकम्

(पितर:) अन्नविद्यादानेन पालका जनकाध्यापकोदेशका: (सोम्यास:) सोम इव शमदमादिगुणान्विता: (अग्निष्वात्ता:) गृहीताग्निविद्या: (पथिभि:) मार्गै: (देवयानै:) देवा आप्ता विद्वांसो यान्ति यैस्तै: (अस्मिन्) वर्त्तमाने (यज्ञे) उपदेशाध्यापनाख्ये (स्वधया) अन्नाद्येन (मदन्त:) आनन्दन्त: (अधि) अधिष्ठातृभावे (ब्रुवन्तु) उपदिशन्त्वध्यापयन्तु वा (ते) (अवन्तु) रक्षन्तु (अस्मान्)पुत्रान् विद्यार्थिनश्च।।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका।।

''जो (सोम्यास:) चन्द्रमा के तुल्य शान्त, शमदमादि गुणयुक्त (अग्विष्वाता:) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (न:) हमारे (पितर:) अन्न और विद्या के दान से रक्षक, जनक, अध्यापक और उपदेशक लोग हैं (ते) वे (देवयानै:) आप्त लोगों के जाने-आने योग्य (पथिभि:) धर्मयुक्त मार्गों से (आ, यन्तु) आवें (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पढ़ाने-उपदेश करने रूप व्यवहार में वर्तमान होके (स्वधया) अन्नादि से (मदन्त:) आनन्द को प्राप्त हुए (अस्मान्) हमको (अधि, ब्रुवन्तु) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी (अवन्तु) सदा रक्षा करें।''

टिप्पणी- उपर्युक्त सम्पूर्ण सन्दर्भ ऋषि दयानन्द का ही है। इससे स्पष्ट है कि जीवित पितरों का ही श्राद्ध और तर्पण होता है, मृतकों का नहीं हो सकता। इस वेद-मन्त्र में १-आयन्तु २-अधिब्रुवन्तु और ३-अवन्तु तीन क्रियाएँ पितरों के सम्बन्ध को बतलाती हैं-

आयन्तु=आवें।

अधिब्रुवन्तु=अधिकारपूर्वक उपदेश करें।

जीवित पितर ही आ-जा सकते हैं, उपदेश दे सकते हैं, पढ़ा सकते हैं- स्पष्ट है कि यहाँ जीवित पितरों से प्रार्थना की जा रही है। मृतक न आ-जा सकते, न उपदेश दे सकते, न ही रक्षा कर सकते।

२-कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।।

मनु. अ-३, श्लोक ८२

अर्थ- (प्रीतिम्-आवहन्) प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थी (पितृभ्य:) पितरों के लिये अन्न, जल, दूध, खीर, मूल और फलों (सबसे अथवा इनमें से किन्हीं पदार्थों) द्वारा (अह:+अह:) प्रतिदिन (श्राद्धम्) श्राद्ध (कुर्यात्) करे।

मनुस्मृति के इस वचन में प्रतिदिन पितरों का श्राद्ध करना कहा है, परन्तु मृतकों का श्राद्ध माननेवाले वर्ष में आश्विन मास के १५ दिन में ही श्राद्ध करने को कहते हैं और करते हैं, परन्तु मनु के उपर्युक्त वचन से यह मृतक श्राद्ध वेद एवं युक्तिविरुद्ध है, अत: त्याज्य है। मृतक श्राद्ध माननेवालों को यह भी मालूम नहीं कि आश्विन मास में ही श्राद्ध का विशेष विधान क्यों है? वास्तविकता यह है कि नियुक्त १५ दिनों में भी जीवित पितरों के श्राद्ध का विधान है।

चातुर्मास के वर्षा-ऋतु में वनस्थ पितर लोग ग्रामों में आ जाते थे। ग्राम से बाहर ठहर जाते थे। वर्षा ऋतु के अन्त में फिर वनस्थ महानुभाव पितर जंगल को जाने लगते हैं, तब गृहस्थी उनका १५ दिन तक खूब सत्कार करते हैं और उनसे उपदेश ग्रहण करते हैं। आधे आश्विन के पश्चात् मार्ग स्वच्छ हो जाते हैं और वनों जंगलों में गमनागमन सुविधा से हो जाता है।

इसी कारण इन दिनों में पितरों की विशेष पूजा गृहस्थ करते हैं, परन्तु यह पूजा जीवितों की ही हो सकती है। मृतकों में 'पितर' शब्द के गुण घटते ही नहीं।

वेद और मनुस्मृति में पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीन की ही 'पितृ' संज्ञा कही गई हैं। ५०-७५-१०० वर्ष तक की आयु वाले क्रमश: पिता-पितामह और प्रपितामह हो सकते हैं और जीवित रह सकते हैं । प्रपितामह से आगे 'पितर' संज्ञा नहीं बतलाई गई। उससे सिद्ध है कि श्राद्ध जीवित पितरों के लिये ही होता है, मृतकों के लिये नहीं।

कोई शङ्का करे कि प्रपितामह से आगे सभी पीढ़ियाँ प्रपितामह ही कहला सकती हैं, तब केवल तीन वर्गों का ही श्राद्ध नहीं है अपितु इनसे पूर्वजों का भी हो सकता है। इसका उत्तर स्पष्ट है कि इस प्रकार सृष्टि के आदि तक यह प्रवाह जा सकता है जो कि अनावस्था दोष पैदा करता है और असम्भव है तथा मृतक श्राद्ध माननेवालों को भी अमान्य है।

अत: सिद्ध है कि जीवित पितरों का ही श्राद्ध और तर्पण होता है, मृतकों के लिये नहीं। मृतकों में पितृ संज्ञा

घटती ही नहीं। मृतक रक्षा कर ही नहीं सकते। रक्षा तो विद्यमान ही कर सकता है।

तीर्थ

(सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास के आधार पर)

श्री रामचन्द्र 'जावेद' एम. ए.

टिप्पणी- 'तीर्थ' राष्ट्र की आधारशिला हैं। 'तीर्थ' देश के कलंक हैं। ये दोनों बातें परस्पर विरोधी हैं, किन्तु हैं सत्य। सच्चे तीर्थ कल्याणकारी और नकली पतन की ओर ले जाने के साधन हैं। आवश्यकता है कि जन-मन में 'तीर्थ' महत्त्व स्थापित किया जाये।- सम्पादक

हमारा देश भारत तीर्थों का घर है। जितने तीर्थ स्थान- हमारे देश में हैं, उतने शायद ही किसी दूसरे देश में हों। फिर पौराणिक विचारधारा के अनुसार हर तीर्थ की अपनी विशेषता है। गया में श्राद्ध करने से पितरों के पाप दूर हो जाते हैं और वे स्वर्गलोक में चले जाते हैं। हरिद्वार, हर की पौड़ी पर स्नान करने से सब प्रकार के पाप छूट जाते हैं। काशी के सम्बन्ध में कहावत है कि **''अन्य क्षेत्रे कृतं पापं काशी क्षेत्रे विनश्यति''** अर्थात् किसी भी क्षेत्र में किये हुए पाप काशी-यात्रा से छूट जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म पुराण में लिखा है कि जो व्यक्ति सैकड़ों हजारों कोस से भी गंगा-गंगा कहता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं सः गच्छति।।

इस प्रकार हमारे यहाँ अनेक ऐसे तीर्थ हैं जो अपने विशेष चमत्कार के कारण प्रसिद्ध हैं। उदाहरण के लिये जगन्नाथपुरी में कलेवर बदलते समय चन्दन का टुकड़ा समुद्र में से अपने आप आ जाता है। चूल्हे पर सात हाण्डे धरने से ऊपर-ऊपर के पहले पकते हैं और रथ आप से आप चलता है। सोमनाथ जी के मन्दिर में सोमनाथ जी की मूर्ति भूमि और आकाश के बीच बिना किसी सहारे के खड़ी है। ज्वालामुखी की ज्वाला के समय में प्रसिद्ध है कि मुसलमान सम्राटों ने उस पर पानी की नहर छुड़वाई और लोहे के तवे जुड़वाये थे फिर भी ज्यादा नहीं बुझी थी और न ही रुकी थी और फिर सबसे बड़ी बात यह है प्रसाद देने पर ज्वाला भी आधा खाती और आधा छोड़ देती है। अमरनाथजी में आप से आप हिमालय से कबूतर के जोड़े आते हैं और सबको दर्शन देकर चले जाते हैं। इसी प्रकार प्रयागराज, कुरुक्षेत्र, बद्रीनारायण आदि अनेक तीर्थ हैं। जिन पर कि आज के जाग्रत तथा वैज्ञानिक युग में विश्वास नहीं किया जा सकता।

कह नहीं सकते कि इन तीर्थों की यात्रा के लिये भारत के कितने लोग कहाँ से कहाँ जाते हैं और धर्म की अगाथ श्रद्धा और मुक्ति की लालसा तथा अनेक अभीष्ट मनोरथों की सिद्धि के लिये कितने कष्ट सहन करते हैं। कम का तो अनुमान ही नहीं यदि भारत सरकार अनुसन्धान कराये कि भारत भर के सभी तीर्थों में कितने यात्री एक वर्ष में पहुँचते हैं और उनका तथा स्वयं हमारी सरकार का कितना उन पर धन लगता है तो हमारा अनुमान ही नहीं विश्वास है कि सरकार अपनी एक पंचवर्षीय योजना पर जो कुछ व्यय करती है लगभग उतनी राशि केवल तीर्थ-यात्रा पर भारत के अन्धविश्वासी धर्मप्रेमी लोग प्रतिवर्ष खर्च करते हैं और फिर परमात्मा न करे यदि जनता की भीड़-भाड़ में कोई दुर्घटना हो जाय या कोई महामारी फूट निकले तो संकट की कोई सीमा नहीं। कुम्भ के मेलों पर हुई पिछली किसी एक दुर्घटना का ध्यान आते ही हमारा हृदय काँप उठता है।

निश्चय ही यह अन्धविश्वास है और साधारण जनता की दुःख से छूटने की स्वाभाविक भावना से खिलवाड़ है। जिस प्रकार एक रोगी अपने स्वास्थ्य लाभ के लिये बिना सोचे-समझे हर डॉक्टर और हर वैद्य के द्वार पर जाता रहता है और उसे अपना मसीहा समझता है, ठीक उसी प्रकार से आत्मिक पीड़ा से सन्तप्त आत्मायें पापों से छुटकारा पाने अथवा सांसारिक सुख-सामग्री की चाह में व्याकुल आत्मायें, अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति के लिये एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ की ओर भटकती रहती हैं। किन्तु भारत की भोली-भाली जनता भूल जाती है कि मनुष्य को अपने किये अच्छे और बुरे कर्मों का फल भोगना पड़ता है-

अश्वयमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

मानना चाहिये कि तीर्थ द्वारा पाप-नाश के इस सिद्धान्त

ने संसार में पाप की मात्रा को बढ़ाया है, क्योंकि पाप से छुटकारे का विचार ही नये दुष्कृत्यों और पाप-कर्मों के लिये सबसे बड़ी प्रेरणा है। विचार कीजिये कि जब मुझे यह ज्ञात है कि मेरे वर्ष भर के पाप एक बार के गंगा-स्नान से धुल सकते हैं तो मैं वर्ष भर में क्या कमी करुँगा। इसलिये आर्यसमाज तीर्थ-यात्रा की वर्तमान परम्परा को सर्वथा निरर्थक समझता है।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि तीर्थ यात्रायें करनेवाले हमारे भाइयों को यदि इन तीर्थस्थानों के पण्डे-पुजारियों और धर्म, कर्म का आडम्बर रचनेवाले लोगों की वास्तविक चारित्रिक स्थिति का पता लग जाये तो वे स्वयमेव इन तीर्थों की ओर जाने का कभी विचार भी न करें।

वास्तव में 'तीर्थ' के शाब्दिक अर्थ हैं! ''**जना०: यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि**'' अर्थात् मनुष्य जिससे संसार के दु:ख-सागर से तर निकले वह तीर्थ है। महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखते हैं कि ''**जल थल तराने वाले नहीं प्रत्युत डुबोकर मारनेवाले हैं।**'' उनकी सम्मति में ''वेद आदि सब शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट सत्य-भाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि और माता-पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ ज्ञान-विज्ञान आदि शुभ गुण कर्म दु:खों से तारनेवाले होने से तीर्थ हैं।''

मौलाना रूप-प्रसिद्ध सूफ़ी कवि हृदय की पवित्रता को तीर्थ मानते हैं।

उनका कथन है-

दिल बदस्त आवुर कि हज्जे अकबर अस्त।
अज हजारां बाग यक दिल बेहतर अस्त।।

अर्थात् सहस्रों तीर्थों से मन की पवित्रता ही सबसे बड़ा तीर्थ है जो हमारे शुभ कर्मों पर निर्भर है। इसलिये हमारे पुण्य-कर्म ही तीर्थ हैं। निश्चय ही आज के स्वतन्त्र भारत में जबकि तीर्थ-यात्रा के लिये दिन-प्रतिदिन सुविधायें बढ़ने के कारण तीर्थ-यात्रा प्रणाली जोरों पर है, आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द की तीर्थ-सम्बन्धी विचारधारा के अधिक से अधिक प्रसार की आवश्यकता है।

पाखण्डों की लाश

पं. भारतेन्द्रनाथ

भारत की गौरव गरिमा सुप्त पड़ी थी,
ऋषियों की परम्परा की लुप्त कड़ी थी,
पुण्य कर्म था शेष यहाँ बस कहने में,
सुख समझा था जन-जन ने दु:ख सहने में।
ऐसे में दयानन्द ने ज्योति दिखाई,
वेद ज्ञान ज्योतित मंजुल राह बताई,
खण्ड-खण्ड कर अधर्म, जय ध्वजा उठाई,
जाग उठी नवजीवन पा तरुणाई।
निशा निराशा की दूर हुई थी मन से,
धर्म फैलने लगा उभर नूतन बल से,
युग बदला, पाखण्डों की लाश पड़ी थी
नए चरण धर कर जनता आज बढ़ी थी।

राष्ट्र गौरव

डॉ. सूर्यदेव

अन्धकार, अज्ञान, अविद्या का छाया था।
तम का तोम महान्, मनुज के मन भाया था।
अण्ड-बण्ड पाखण्ड, चण्ड होकर आया था।
अभय, अजस्र, अखण्ड, अबुध जन भ्रमाया था।
हत भारत भू के भाग में भ्रम का भारी भूत था।
पर प्रभु के अति अनुराग में, निहित दयामय दूत था।
दिनकर दैवी दूत भव्य भारत में आया।
पावन पुण्य प्रभूत, प्रेम का पाठ पढ़ाया।
जागा जगमग लोक, छोड़कर छल की छाया।
हुआ दिव्य आलोक, मिटी मनमोहक माया।
श्रुति 'सूर्य' रूप से उदित हो, दयानन्द ऋषिराजता।
शुभ 'सत्य-अर्थ संवलित हो, पुण्य प्रकाश विराजता।
वह 'सत्यार्थ-प्रकाश' हमारा धन साधन है।
वह 'सत्यार्थ-प्रकाश' हमारा जीवन धन है।
वह 'सत्यार्थ प्रकाश' हमारा पण है प्रण है।
वह 'सत्यार्थ प्रकाश' आर्यगण पर ऋषि ऋण है।
वह गुरु का आशीर्वाद है, वही हमारा प्राण है।
वह आर्य्य राष्ट्र का नाद है, वही हमारा त्राण है।

देवनागरी लिपि
वैज्ञानिकता एवं प्रयोजनीयता

डॉ. प्रभु चौधरी

भाषा और संस्कृति का आपस में गहरा सम्बन्ध है। संस्कृति हमारी पहचान है तो भाषा उस पहचान की अभिव्यक्ति। भाषा विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। भाषा का निर्माण समाज के माध्यम से होता है। भाषा संस्कृति की संवाहिका भी होती है। हमारी सभ्यता और संस्कृति को धारण करने के साथ ही वह उनके संरक्षण-संवर्द्धन का कार्य भी करती है। डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार ''भाषा की यात्रा इकहरी नहीं होती बल्कि वह अपने समूचे परिवेश, इतिहास, भूगोल, चेतना और संवेदना सहित यात्रा करती है। डॉ. तुलसीराम के शब्दों में भाषा आत्मा की आवाज है, संस्कृति का संगीत है, सभ्यता का मुँहबोलता रूप है। यदि भाषा को बदल दिया जाये तो सभ्यता, संस्कृति आत्मा सब बदलने लगते हैं।''

डॉ. हरीशकुमार शर्मा के मतानुसार, ''भाषा के साथ लिपि का सम्बन्ध होता है। भाषा जैसे संस्कृति के संरक्षण-संवर्द्धन का काम करती है, वैसे ही लिपि भाषा का रूप सुरक्षित रखती है, उसे सशक्त और सुदृढ़ बनाती है। लिपि में बँधकर ही कोई बोली भाषा का रूप धारण करती है। भाषा संस्कृति का स्वर है तो लिपि भाषा का श्रृंगार। लिपि भाषा को सजाती है, उसे शक्ति देती है, विस्तार देती है तथा दीर्घायु बनाती है। अत: लिपि का चयन बड़े सोच-समझकर उस भाषा की प्रकृति के अनुकूल होना चाहिये ताकि उसका सही स्वरूप दीर्घकाल तक सुरक्षित रहे, संरक्षित रहे।''

यदि वाणी के प्रसाद से लोकजीवन चालित होता है तो लिपि के प्रश्रय में भाषा को पहचान मिलती है। लिपि के द्वारा ही भाषा अपने विकास-क्रम एवं संस्कारों को संजोकर रख पाती है। भाषा उच्चारित व मौखिक है तो लिपि अंकित व दृश्य है। लिपि के बिना भाषा का विकास असम्भव है। यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार ''भारत में १९८ भाषाएँ खतरे के कगार पर हैं, जिनमें से ९७ पूर्वोत्तर भारत की हैं और इनमें से भी सबसे कम अधिक बोलियाँ अरुणाचल प्रदेश की हैं। लिपि के अभाव में यहाँ भाषाओं और बोलियों को जीवित रखना कठिन प्रतीत होता है। यदि समय रहते इन बोलियों को नहीं बचाया गया तो इन बोलियों के लुप्त होने की आशंका बनी रहेगी।''

डॉ. शेख अफरोज फातिमा शेख हबीब के अनुसार ''प्राचीन काल में भारत में ब्राह्मी, खरोष्ठी तथा सिंधु घाट की लिपियाँ प्रचलित थीं। इनमें से ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियाँ व्यवहार में अधिक रहीं । ब्राह्मी लिपि से आधुनिक लिपियों का विकास हुआ, जिनमें देवनागरी लिपि प्रमुख है। प्राचीन काल में पश्चिमी उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान एवं महाराष्ट्र में इसका प्रचार एवं प्रसार था। मध्यप्रदेश की लिपि होने के कारण देवनागरी अत्यन्त महत्वपूर्ण लिपि है।''

देवनागरी लिपि एक पूर्ण विकसित लिपि है, जिसमें वे सभी ध्वनियाँ हैं जिनमें हम अपने प्रत्येक विचार या भाव को उसी रूप में प्रकट कर सकते हैं। भारतीय भाषाओं में प्रचलित सभी ध्वनियों को अंकित करने की इसमें क्षमता है। उच्चारण के अनुसार देवनागरी लिपि को आसानी से लिखा जा सकता है इसलिए यह लिपि एक उच्चगुण युक्त वैज्ञानिक लिपि कहलाती है। अपने आदर्श एवं देवत्व गुणों के कारण ही इसे देवनागरी लिपि कहा जाता है। आज भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के अन्य देशों जैसे - पाकिस्तान, बांग्लादेश, वियतनाम, सूरीनाम, मॉरीशस, फिजी. मलेशिया, भूटान, नेपाल, म्यांमार, तिब्बत आदि में देवनागरी लिपि का प्रचार एवं प्रयोग हो रहा है। अमेरिका, यूरोप, एशिया जैसे महादेशों के अनेकानेक विश्वविद्यालयों में नागरी लिपि का अध्ययन-अध्यापन तथा शोध कार्य भी हो रहे हैं।

प्रो. गोविन्दप्रसाद शर्मा का अभिमत है कि किसी लिपि के वैज्ञानिक होने का अर्थ है-

१. जिस लिपि में जैसा लिखा है वैसा ही पढ़ा जाये।

२. जब लिपि में एक ध्वनि को व्यक्त करने के लिये

एक चिह्न हो।

३. मानक एवं वर्णबोधक चिह्न इतने भिन्न हों कि किन्हीं दो चिह्नों के स्वरूप में परस्पर कोई भ्रम न हो।

इन तीन आधारों पर हम देखते हैं कि देवनागरी लिपि अन्य प्रचलित लिपियों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक और समृद्ध है।''

देवनागरी लिपि सहज, सुगम, सरल, सुबोध, सुस्पष्ट, सम्पन्न, ध्वन्यात्मक अक्षरीय वैशिष्ट्य, व्यापक सम्प्रेषणीय जैसी अनेक वैज्ञानिक विशेषताओं के कारण विश्व की करीब ५४० लिपियों में प्रमुख एवं एक आदर्श लिपि मानी गई है। यह लिपि समस्त प्राचीन साहित्य की लिपि है। समूचे संस्कृत, प्राकृत, पाली एवं अपभ्रंश साहित्य की रचना देवनागरी लिपि में हुई है। इसी प्रकार ज्योतिष, गणित, दर्शन, व्याकरण, धर्मशास्त्र, तन्त्र साहित्य आदि इसी लिपि में लिखा गया है। इसके अलावा हिन्दी, मराठी और नेपाली इन तीनों भाषाओं का साहित्य भी इसी लिपि में है। इस लिपि का प्रयोग भारत के बहुत बड़े क्षेत्र हिमालय से महाराष्ट्र तक तथा गुजरात से नागालैंड तक होता रहा है। डॉ. सत्येन्द्र चतुर्वेदी के मतानुसार ''देवनागरी लिपि में राष्ट्रभाव का जागरण हुआ है, इसमें कई भाषाओं का विशाल साहित्य सृजित हुआ है। वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश से लेकर वर्तमान तक का विपुल साहित्य देवनागरी लिपि में है। इस लिपि से जुड़ने से यह राष्ट्रभाव विकसित होता है कि हम अपनी व्यापक विचार परम्परा और चिंतन परम्परा से जुड़े हैं।''

१. सर्वसमावेशिकता इस लिपि की महत्वपूर्ण विशेषता है। इसमें संसार की लगभग सभी भाषाओं की ध्वनियों को उच्चारित एवं प्रतिनिधित्व करने वाले चिह्न विद्यमान है।

२. इस लिपि में ध्वनि अवयवों और उच्चारण के अनुसार स्वरों तथा व्यंजनों का विभाजन हुआ है।

३. देवनागरी में स्वर क्रमानुसार रखे गये हैं, अर्थात् कंठ से श्वास सीधे स्वरों के रूप में निकलती है। उसके पश्चात् व्यञ्जनों का क्रम आता है। रोमन लिपि में ऐसा नहीं है। एक स्वर कहीं है तो दूसरा और कहीं।

४. इस लिपि की वर्णमाला में वर्णों का उच्चारण स्थान के अनुसार (कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दन्त, ओष्ठ एवं नासिका) वैज्ञानिक रीति से किया गया है।

५. इस लिपि में प्रत्येक वर्ण का उच्चारण होता है रोमन लिपि (अंग्रेजी) में ऐसा नहीं है। कई वर्ण मूक होते है जैसे Palm में L (ल) तथा Listen में T (ट) मूक है।

६. देवनागरी में प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग चिह्न है तथा एक चिह्न की एक ही ध्वनि होती है जबकि अंग्रेजी में ऐसा नहीं है- 'क' वर्ण के लिये अंग्रेजी में C, K व Q तीनों का प्रयोग किया जाता है।

७. इस लिपि में ध्वनियों के उच्चारण एवं लिखावट में साम्यता होने के कारण जैसा लिखा जाता है वैसे ही पढ़ा जाता है।

८. इस लिपि में वर्णों का उच्चारण निश्चित है, जबकि रोमन लिपि में लिखा कुछ जाता है और उच्चारित रूप कुछ अलग ही होता है जैसे - But (बट) और Put (पुट)।

९. देवनागरी लिपि में व्यंजन संयोग के सरल नियम हैं, इसलिये संयुक्त व्यंजन लिखने में किसी प्रकार की कठिनाई महसूस नहीं होती क्योंकि व्यंजन-संयोग अंकित करने की पद्धति पूर्ण है।

१०. देवनागरी लिपि वर्णनात्मक नहीं बल्कि आक्षरिक लिपि है, अर्थात् इस लिपि का हर व्यंजन चिह्न न होकर 'व्यंजन' और 'अ' स्वर का योग है, याने व्यञ्जन और स्वर का संयुक्त रूप है।

११. इस लिपि में रोमन वर्ण के समान छोटे-बड़े तात्पर्य (केपिटल व स्मॉल) वर्णों के अलग-अलग रूपों की उलझन नहीं है।

१२. अनुनासिक ध्वनि के लिए वर्ण का पञ्चम वर्ण देवनागरी लिपि की अपनी विशेषता है।

१३. देवनागरी की वर्णमाला के अक्षरों के लिए रोमन लिपि की तुलना में कम जगह की आवश्यकता होती है। रोमन लिपि में ख, घ, झ, ठ के लिए क्रमशः K.G. J, T में 'H' ज्यादातर लगाना पड़ता है।

१४. देवनागरी लिपि में ह्रस्व में तनिक सा परिवर्तन

करके (मात्रा लगाकर) दीर्घ बनाया जा सकता है, जैसे– अ, इ, उ में क्रमशः मात्रा लगाकर आ, ई, ऊ बनाया जा सकता है।

१५. यह लिपि सुपाठ्य एवं सन्देहरहित है, अर्थात् एक संकेत से दूसरे संकेत का भ्रम नहीं होता।

१६. यह लिपि अत्यन्त गत्यात्मक और व्यवहारिक है।

१७. देवनागरी लिपि ने समय के साथ आवश्यकतानुसार कई चिह्नों को अपना लिया है, जैसे कॉलेज या डॉक्टर में आधे O (ऑ) की ध्वनि को सूचित करने के लिये आ (ा) की मात्रा पर अर्धचन्द्र (ॅ) का चिह्न लगा दिया जाता है। उसी प्रकार फारसी वर्णों के सही प्रयोग के लिए मूल ध्वनियों के नीचे नुक्ते (क, ख, ग, ज, व, फ) का चिह्न लगाया जाता है।

१८. इस लिपि को सीखने में कठिनाई नहीं होती। अपनी सरलता एवं सहजता के कारण यह विश्वभर में प्रचलित होती जा रही है।

१९. यह लिपि अत्यन्त कलात्मक, आकर्षक और नयनाभिराम होने के कारण एक आदर्श लिपि मानी जाती है।

२०. डॉ. आनन्दस्वरूप पाठक का अभिमत है कि ''देवनागरी लिपि अपनी संरचना, प्रयोग, प्रक्रिया तथा कार्य–प्रभाव की दृष्टि से विश्व की समस्त लिपियों की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक है। इसमें लिपिक्रम की वैज्ञानिकता और वर्णमाला का व्यवस्थित अनुरूप है।''

आचार्य विनोबा भावे ने बड़ी सूझ–बूझ के साथ यह सुझाव दिया था कि 'भारत की एकता के लिये हिन्दी भाषा जितना काम देगी उससे बहुत ज्यादा काम देवनागरी लिपि देगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि भारत की समस्त भाषाएँ देवनागरी लिखी जाएँ। नागरी लिपि सब भाषाओं में चले, इसका मतलब दूसरी लिपियों का निषेध नहीं है, दोनों लिपियाँ चलेंगी। अर्थात् विनोबाजी ने नागरी को विभिन्न भारतीय तथा विदेशी भाषाओं की जोड़ लिपि या सम्पर्क लिपि के रूप में संवर्द्धन की महत्ता प्रतिपादित की थी। भारत की जिन बोलियों की अभी कोई लिपि नहीं है, यदि वो देवनागरी लिपि को स्वीकार कर लें, तो देश की भाषा और राष्ट्रीय एकता अधिक सुदृढ़ होगी तथा इन बोलियों को विकसित होने का समुचित अवसर भी मिलेगा। देवनागरी लिपि भारत की राष्ट्रलिपि है। यह एकमात्र ऐसी लिपि है जिसमें समूचे देश को एक सूत्र में बाँधने का सामर्थ्य है। यह लिपि राष्ट्रीय एकता का सेतुबंध है। पंडित उमाशंकर दीक्षित इसलिये कहते हैं कि–

देवनागरी का करें मिलकर सब सम्मान।
जगे एकता भावना, होवे देश महान ।।

देवनागरी लिपि ने सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जैसे– ई–मेल, मोबाइल आदि में भी अपनी समर्थता सिद्ध कर दी है। आजकल इस लिपि के अनेक सॉफ्टवेयर आसानी से उपलब्ध हो रहे हैं। यही कारण है कि आज के वैज्ञानिक, मशीनरी एवं भूमंडलीकरण के इस युग में देवनागरी लिपि का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। आजकल देवनागरी लिपि में प्रचारित विज्ञापन अत्यन्त लोकप्रिय हो रहे है। चूँकि इस लिपि को टंकण, मुद्रण और आशुलेखन में भी सुविधापूर्वक अपनाया जा सकता है, इसलिये प्रकाश और अनुवाद की दुनिया में भी यह तेजी से कदम बढ़ा रही है। डॉ. जयन्तीप्रसाद मिश्र के मतानुसार–

देवनागरी लिपि है सब लिपियों से न्यारी।
मात्राओं, वर्णों, ध्वनियों की एक फुलवारी।।
उच्चारण, लेखन में समता यहाँ निराली।
ह्रस्व, दीर्घ, अनुस्वार, अनुनासिक–छविवाली।।

राष्ट्रकवि स्व. श्री मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में–

जैसा लिखो वैसा पढ़ो भूल हो सकती नहीं।
है अर्थ का न अनर्थ इसमें एक बार हुआ कहीं।।
इस भाँति होकर शुद्ध यह अति सरल और सुबंध है।
क्या उचित फिर इसका कभी अवरोध और विरोध है।

देवनागरी लिपि, भाषा का विश्वकुटुंबकम् का अद्वैत मूल मन्त्र दे रही है। यही कारण है कि आज देवनागरी विश्वनागरी की भूमिका की ओर अग्रसर है।

अध्यक्ष राष्ट्रीय शिक्षक चेतना, महिदपुर रोड
जिला उज्जैन म.प्र.

संस्था – समाचार

उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार- ऐतिहासिक दृष्टि से हमारा भारतवर्ष विश्व में एक अनोखा स्थान रखता है। वेदों का अति प्राचीनतम ग्रन्थ होना, कई पुराने शहरों-सभ्यताओं का विकसित ढाँचा पाया जाना आदि अनेक रहस्य जो भारत की ओर दुनिया की दृष्टि को मोड़ते हैं। यह हमारे लिये गर्व की बात है कि इस भूमि में बड़े-बड़े दिग्गज महर्षि आदि हुये हैं जिन्होंने ईश्वर की सत्ता को स्वीकारते हुये वेद को ईश्वरीय वाणी माना और उसे ही अन्तिम प्रमाण भी माना है। आर्यसमाज की मान्यताएँ भी वेदाधारित हैं। मनुष्य का सर्वांगीण विकास हो इसके लिये महर्षियों ने हमारे जीवन में कई संस्कारों का विधान किया है। इन संस्कारों की परम्परा चलती रहे इसके लिये प्रतिवर्ष की भाँति महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष गुरुकुल, अजमेर में इस वर्ष भी नवागन्तुक ब्रह्मचारियों का उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार हुआ। श्रावणी उपाकर्म के इस यज्ञ के ब्रह्मा पद का निर्वहन भ्राता श्री प्रभाकर जी ने किया और आचार्य पद का निर्वहन आचार्य श्री घनश्याम जी ने किया।

०३-०८-२०२० सोमवार को आश्रम के सुरम्य वातावरण में तीन नये ब्रह्मचारियों का संस्कार किया गया- ब्र. विवेक, ब्र. रौनक एवं ब्र. वंश। जिन्हें भी इस अलौकिक दृश्य को देखने का अवसर मिला वे सभी अत्यन्त आनन्द एवं हर्ष का अनुभव कर रहे थे। ब्रह्मचारी भी अति उत्साहित थे। इसके लिये उन्हें विधि के अनुसार एक दिन पहले (०२-०८-२०२०) अन्न का सेवन नहीं करना था। तीन ब्रह्मचारियों ने केवल दूध पीकर एक दिन का उपवास किया एवं महर्षि के ब्रह्मचर्य के उपदेशों का अध्ययन किया। उन्हें नवीन वस्त्र, दण्ड, मेखला आदि धारण करवाया गया, गुरुवाणी से पवित्र गायत्री मन्त्र प्रदान किया गया। आचार्य के समीप विद्याओं के अध्ययन का प्रयत्न करने हेतु संकल्प लिया गया। पिता के पद का निर्वहन करते हुये श्री वासुदेव जी ने ब्रह्मचारियों को उनके २२ नियमों से अवगत कराया। पश्चात् ब्रह्मचारियों ने भिक्षाटन किया। इस दौरान उपस्थित सज्जनों ने ब्रह्मचारियों का उत्साह बढ़ाते हुये अपने-अपने आशीर्वचन कहे। इस समारोह में आचार्य शिवकुमार जी भी उपस्थित थे। उनके उद्‌बोधन ने भी विद्यार्थियों का मार्गदर्शन किया। गुरुकुल के आचार्यों ने भी ब्रह्मचारियों के लिये मङ्गल वचन कहे। भ्राता श्री प्रभाकर जी ने इस संस्कार का महत्त्व बताया और निरन्तर प्रयत्नशील रहने को कहा। ब्रह्मचारियों में अब एक नयी ऊर्जा थी। माता ज्योत्स्ना 'धर्मवीर' जी हमें सदा ही इन बातों को सिखाती रहती हैं, उनके ममतामयी सान्निध्य में कार्यक्रम का समापन हुआ।

प्रचार-कार्यक्रम- एक छोटे से विषाणु ने आज पूरे विश्व की गति को स्थिर कर दिया है। पूरा विश्व आज इससे त्रस्त हो गया है, इसी के साथ इस कोरोनाकाल में आर्यसमाज की विचारधाराओं के प्रचार-कार्यक्रम भी बन्द पड़े थे। श्रावण सप्ताह में इन समस्याओं का समाधान करते हुये परोपकारिणी सभा के प्रधान आर्यविद्वान् डॉ. वेदपाल जी के प्रवचनों की वीडियो रिकॉर्डिंग की गयी। ये व्याख्यान १० अगस्त से १६ अगस्त तक चले, जिनमें प्रधान जी की 'श्रावणी, श्रीकृष्ण, सत्यार्थप्रकाश एवं महर्षि दयानन्द' विषयों पर शोधपूर्ण व्याख्या थी। इस एक सप्ताह की प्रवचनमाला में प्रत्येक वीडियो लगभग ५० मिनट का था, जिनका परोपकारिणी सभा के फेसबुक पर सीधा (ऑनलाइन) प्रसारण हुआ। इनकी रिकॉर्डिंग ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में प्रातः यज्ञ के बाद होने वाले व्याख्यान के समय ही की गयी जिससे प्रातः यज्ञ में उपस्थित सज्जनों एवं विद्यार्थियों को भी इसका लाभ मिला।

इसका सीधा प्रसारण 'आर्य सन्देश' टी.वी.चैनल पर भी किया गया ताकि अधिकाधिक आर्य बन्धुओं को इसका लाभ मिल सके।

वृष्टि-यज्ञ- प्रतिवर्ष ऋषि उद्यान में वृष्टि-यज्ञ का आयोजन किया जाता है। इस वर्ष इसका प्रारम्भ २० जुलाई को हुआ था। प्रतिदिन प्रातः यज्ञ में इसकी आहुतियाँ भी यथावत् दी गईं।

स्वामी प्रवासानन्द जी का जन्मदिन- स्वामी प्रवासानन्द जी का जन्म २० अगस्त १९२६ को रंगवासा (राऊ) जिला इन्दौर मध्यप्रदेश के जोशी परिवार में पिता

श्री देवराम एवं माता श्रीमती देवकी के घर हुआ। वैदिक धर्म के प्रचारार्थ आपने भारत-नेपाल की लम्बी यात्रा की तथा इसमें मिली दान राशि आप आर्यसमाजों को ही दान करते रहे। इस वर्ष आपके ९४ वर्ष पूर्ण हो गये हैं तथा ९५ वें वर्ष में प्रवेश कर चुके हैं। इस अवस्था में भी आपका स्वास्थ्य बहुत ही अच्छा है। प्रात: सायं यज्ञ में आपकी उपस्थिति प्रतिदिन रहती है। आप 'जीवेम शरद: शतम्' वाक्य को अवश्य सार्थक करें ऐसी हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

स्मृतिशेष आचार्य डॉ. धर्मवीर जी- आर्यसमाज के एक मजबूत स्तम्भ, परोपकारिणी सभा की वर्तमान सक्रियता एवं भव्यता के जन्मदाता, वेद-वेदांग आदि ग्रन्थों के उद्‌भट विद्वान्, अलौकिक प्रतिभा के धनी, सौम्यता, सुशीलता एवं सहजता की प्रतिमूर्ति, नवयुवकों के आदर्श, महर्षि दयानन्द के मानसपुत्र एवं उनके स्वप्नों को साकार करने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील तपस्वी, परोपकारिणी सभा के पूर्व प्रधान डॉ. धर्मवीर जी जिनके कार्यकाल में सभा ने अत्यन्त प्रतिष्ठा एवं उन्नति को प्राप्त होकर अनेक प्रकल्पों को चलाया। जिनमें गुरुकुल, गोशाला, पाण्डुलिपि संरक्षण आदि कार्य प्रमुख थे। उनके सम्पादकीय लेखनी ने ही परोपकारी पत्रिका को विश्व स्तर तक व्यापक किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती बलिदान शताब्दी सन् १९८३ ई. में परोपकारिणी सभा को उसका यह पुत्र मिला और इसी दिन से आपने अपना पूरा जीवन सभा को समर्पित कर दिया। उनकी पूरी जीवनयात्रा कई उतार-चढ़ावों से परिपूर्ण रही, फिर भी उन्होंने कभी हार नहीं मानी, पहाड़ जैसी समस्याओं को भी निडरता से पार किया एवं ऋषि-कार्य में सदा संलग्न रहते हुये ६ अक्टूबर २०१६ को भौतिक देह त्यागकर अनन्त में लीन हो गये।

डॉ. धर्मवीर जी का जन्म भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी तदनुसार इस वर्ष उनका जन्मदिन २२ अगस्त को ऋषि उद्यान में मनाया गया। प्रात: यज्ञ में विशेष आहुतियाँ दी गयीं। व्याख्यान के क्रम में सभा के वर्तमान प्रधान डॉ. वेदपाल जी का उद्‌बोधन हुआ, जिसमें उन्होंने धर्मवीर जी की अनेक विशेषताओं के बारे में बताया। चूँकि धर्मवीर जी शास्त्रों के व्यसनी थे वे कभी भी किसी भी समय को व्यर्थ नहीं करते थे बल्कि उस समय शास्त्रों को दोहरा लिया करते थे। इसी स्मृति को ध्यान में रखते हुये गुरुकुल के ५ विद्यार्थियों ने भिन्न-भिन्न शास्त्र जिनको उन्होंने कठस्थ किया था उसे माइक पर आकर सुनाया। भ्राता श्री प्रभाकर जी ने भी अनेक बातें धर्मवीर जी के विषय में बताईं। इसी दिन आचार्य श्री घनश्याम जी का भी जन्मदिन था, अत: कार्यक्रम का समापन आचार्य श्री के आशीर्वचनों से हुआ।

अन्य प्रकल्प- शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षणिक भ्रमण का अपना एक अलग ही महत्त्व होता है। १७ अगस्त २०२०, सोमवार गुरुकुल के विद्यार्थियों को पर्वतारोहण के लिये ले जाया गया। जिसका विवरण परोपकारी के अगले अंक में 'गिरिं कदा गमिष्याम:' लेख में विस्तार से कर दिया गया है।

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में प्रतिदिन प्रात:-सायं यज्ञ होता है। प्रात: प्रवचन के क्रम में आचार्य श्री घनश्याम, आचार्य श्री श्यामलाल, भ्राता श्री प्रभाकर, भ्राता श्री सोमेश जी के व्याख्यान होते हैं। गुरुकुल की कक्षाएँ नियमित रूप से चल रही हैं एवं अन्य सभी कार्य भी आप सभी आर्यबन्धुओं की सहायता से निर्बाधित रूपसे चल रहे हैं। **ब्र. रोहित आर्य**

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है।

(स.प्र. स. ३)

शङ्का समाधान-५८

डॉ. वेदपाल

शङ्का- 'जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्म-चरित्र का पुस्तक हो उसको अध्यापक लोग मंगवा के देखें।' कौन सा जन्म-चरित्र? किसने लिखा था?

डॉ. देव शर्मा, दिल्ली

समाधान- जिस वाक्य 'जन्म से...देखें' पर दो प्रश्न उपस्थित किए गए हैं, उसका पूर्व प्रसङ्ग महत्त्वपूर्ण है। पूर्व प्रसङ्ग को छोड़कर मध्य से पंक्ति उठाने पर प्रश्न उत्पन्न हुए हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में विवाह के सम्बन्ध में कहा है-

''परन्तु जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें, तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको 'फोटोग्राफ' कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं की अध्यापिका के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापक के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें, जिस-जिस का रूप मिल जाय उस-उस के इतिहास अर्थात् 'जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्म-चरित्र का पुस्तक हो उसको अध्यापक लोग मंगवा के देखें,' जब दोनों के गुण-कर्म-स्वभाव सदृश हों...।''

यहाँ शङ्कामूलक वाक्य के पूर्वस्थ 'अर्थात्' पद से पूर्व ध्यान देने पर स्पष्ट होता है कि-विद्याध्ययन करते समय उसका आचरण/चरित्र किस प्रकार का था? इस चरित्र का लेखक गुरुकुल का आचार्य/आचार्या है। आज भी चरित्र प्रमाण पत्र का प्रदाता स्कूल/कॉलेज का प्रिंसीपल अथवा जहाँ से व्यक्ति अन्तिम शिक्षा प्राप्त करता है वहीं का प्रमुख व्यक्ति चरित्र प्रमाण-पत्र देता है। आज भी सर्वत्र यही व्यवस्था है।

महर्षि का अभिप्राय स्पष्ट है कि विवाह से पूर्व केवल बाह्य रंगरूप/शरीर सौष्ठव ही दर्शनीय/विचारणीय नहीं, अपितु पूर्व का आचरण/चाल-चलन तथा गुण-कर्म-स्वभाव भी जानने चाहिएँ। इसका माध्यम उसके अध्यापक/आचार्य निश्चित ही सटीक जानकारी के उचित स्रोत हैं।

[illegible]

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानुः	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

फिर एक 'महाभारत' रच दो,

लक्ष्मी रूपल

हे युगद्रष्टा! हे युगस्रष्टा
हे युग संस्थापक! युगाधार!
तेरी महिमामय प्रभुता को
युग-युग तक युग का नमस्कार।

तुम कर्म बने तुम धर्म बने
युग के संरक्षक मर्म बने,
करके संस्कृति का पोषण तुम
युगवीर बने, युगधीर बने।

कितने दुर्योधन दु:शासन
घूमने निरन्तर सड़कों पर,
कितनी द्रौपदियाँ नग्न हुईं
कितनी मर मिटीं जलीं अब तक।

ताण्डव फैला बंदूकों का
अपहरण रोज होता रहता,
रक्षक ही आज बने भक्षक
यह कैसा आर्यावर्त बना?

साक्षी है कुरुक्षेत्र अब भी
कंसों का शासन चलता है,
पापों की नित बहती नदियाँ
दुष्टों की झोली भरती है।

देवों की देव मंदिरों की
धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं,
पुतले जलते आदर्शों के
ठहरा सा लगता है जीवन।

रथ तो अब भी चलते रहते
पथ राजनीति के होते हैं,
गुमराह हुई जनता सारी
हम सब विवेक खो बैठे हैं।

अपराधों की भरमार यहाँ
व्यवहार हुआ व्यापार सभी
जिसका सिक्का चल जाता है
बस कृष्ण वही बन जाता है।

रोती है मानवता पल-पल
सभ्यता भटकती है दर-दर,
आँसू भी सूख गए बहकर
पुरातत्व चढ़ा बलिवेदी पर।

हे वासुदेव! हे जगवन्दन
है कहाँ सुदर्शनचक्र आज?
दुष्टों का, घोर शत्रुओं का
है कहाँ छिपा विध्वंस आज?

क्या कोई अर्जुन नहीं रहा
गाण्डीव उठाए कन्धे पर,
सारथी कृष्ण सा नहीं बचा
रथ का संचालन करने को?

हे कर्णधार! हे ब्रह्मरूप
हे परमपिता! हे परमेश्वर,
ले रहे परीक्षा क्यों अब तक
धीरज की कठिन प्रहारों में।

लुट रहा राष्ट्र घुटती साँसें
अन्यायों अत्याचारों से,
धरती पर हा-हाहाकार मचा
भूखे, नंगे, बेचारों से।

हे कृष्ण! चले आओ अब तो
फिर एक महाभारत रच दो,
भूली-भटकी मानवता को
फिर कर्मभूमि दिखला जाओ।?

हे सत्स्वरूप! हे वन्दनीय
पथ बता दो चलने भर को,
निस्वार्थ रहें सेवा-पथ पर
जीवन को सार्थक बना सकें।

साभार 'लोकशिक्षक', जयपुर

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि ''**कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।**'' यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३१ अगस्त २०२० तक)

१. श्रीमती शिवकान्ता पत्नी श्री गणपतलाल तापड़िया, कोटा २. आचार्य घनश्याम, अजमेर ३. श्री ईश्वर दयाल माथुर, जयपुर ४. श्री भास्कर सेन गुप्ता, अमेरिका ५. श्री अग्निवेश गहलोत, अजमेर ६. श्री प्रियव्रत आर्य, नई दिल्ली ७. श्रीमती प्रतिभा हाण्डा, जबलपुर ८. श्री राजपाल सिंह, मेरठ।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१६ से ३१ अगस्त २०२० तक)

१. श्री बलवानसिंह वैश्य, झज्जर २. श्री अग्निवेश गहलोत, अजमेर ३. श्री कन्हैयालाल गहलोत, अजमेर ४. श्री विकास सक्सेना, अजमेर ५. श्रीमती सुन्दर देवी, अजमेर।

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ **पृष्ठ :** २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा **पृष्ठ :** ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर **पृष्ठ :** ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग **पृष्ठ :** २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बाहर का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी **पृष्ठ :** १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद। **मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। **महर्षि दयानन्द सरस्वती**